धर्मायण

विषय - सूची

श्रीराम-स्तुति (सात्वत-तन्त्र से) 2

हनुमत्-स्तुति- सुरेश चन्द्र मिश्र 4

देवी-पूजन में सर्वोत्तम नैवेद्य का विवेचन
भवनाथ झा 5

वैष्णव सन्त तुलसीदास की अन्तर्यात्रा
डॉ. राजेश्वर नारायण सिन्हा 8

रामायणकालीन-राजव्यवस्था
डा० मोना बाला 15

तुलसी का युगबोध एवं सामाजिक आदर्श
श्री राकेश चन्द्र मिश्र 'विराट्' 19

लोकदेवता महात्मा गणिनाथ एवं योगेश्वर गोविन्दजी
श्री गोपाल भारतीय 23

मूर्ख के लक्षण
प्रो. रामविलास चौधरी 29

रुद्राक्ष के धार्मिक अनुप्रयोग
डा. मगनदेव नारायण सिंह 32

गर्भस्थ परीक्षित पर भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा
डा. जयनन्दन पाण्डेय 38

अद्भुत है हमारा शरीर
डा. नीरज कुमार मिश्र 43

ज्योतिष की दृष्टि में मानसिक रोग एवं अस्थमा रोग
डा. राजनाथ झा 46

<u>अन्य स्थायी स्तम्भ</u>

योग की परिभाषा, बोध-कथाएँ, संस्कृत-पाठ, मन्दिर समाचार-परिक्रमा आदि, महावीर मन्दिर में विभिन्न पूजन मदों में निर्धारित शुल्क

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोध-परक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

SksKAäbkgApIAù.1g(kjh2k
EkPkkAnUÇAk
अंक : 85
माघ-चैत्र, 2071
जनवरी-मार्च, २०१५ ई0

प्रधान सम्पादक
भवनाथ झा

सहायक सम्पादक
श्री सुरेशचन्द्र मिश्र
डा. मगनदेव नारायण सिंह
महावीर मन्दिर प्रकाशन
के लिए
प्रो. काशीनाथ मिश्र
द्वारा प्रकाशित
तथा
प्रकाश ऑफसेट, पटना में मुद्रित

अक्षर संयोजन- दिनकर कुमार

पत्र-सम्पर्क:
धर्मायण,
पाणिनि-परिसर,
बुद्ध-मार्ग,
पटना-800001
दूरभाष – 0612-3223293
E-mail: mahavirmandir@gmail.com
Web: www.mahavirmandirpatna.org

मूल्य : **पन्द्रह रुपये**

आवरण-चित्र
महावीर मन्दिर परिसर में स्थापित सन्त रविदास की भव्य मूर्ति।

नमसा विधेम

श्रीराम-स्तुति

(सात्वत तन्त्र से)

श्रीसीताराम
('दि माइथोलोजी ऑफ दि हिन्दूज',
चार्ल्स कोलमेन, लन्दन, 1832 से)

वैष्णव नारदीय पाञ्चरात्र साहित्य के अन्तर्गत सात्वत-तन्त्र अत्यन्त आदृत है। श्रीमद्भागवत के आरम्भ में इस तन्त्र का आदरपूर्ण उल्लेख हुआ है कि महर्षि नारद ने इसकी रचना की- **तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणा यतः।** (भागवत 1.3.8)। यह सात्वत-संहिता से भिन्न पाञ्चरात्र साहित्य है, जिसे प्रथम तन्त्र कहा गया है। **'प्रथमं सात्वतं तन्त्रम्'** वैष्णवागम साहित्य में प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन पं. अनन्त शास्त्री फड़के के सम्पादन में चौखम्भा संस्कृत सीरीज से 1934 ई. में हुआ है। इसमें कुल नौ पटल हैं, जिनमें वैष्णव भक्ति-वेदान्त, योग एवं उपासना इन तीनों का विशद वर्णन हुआ है। इसके द्वितीय पटल में दशावतार-वर्णन के क्रम में श्लोक संख्या 33 से 41 तक रामावतार का सम्पूर्ण आख्यान वर्णित है। अति संक्षेप में सम्पूर्ण आख्यान इस अंश की विशेषता है। इस अंश का काव्यशास्त्रीय सौन्दर्य भी महत्त्वपूर्ण है। सुधी पाठकों के लिए हिन्दी अनुवाद के साथ यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।- सं.

वृन्दारकैः परिनिषेवितपादपद्मः श्रीरामचन्द्र इति सूर्यकुलाब्धिजातः।
देवारिनाशनविधौ कुशिकान्वयेन नीतो महेशधनुराजगवं बभञ्ज॥३३॥

देवतागण जिनके चरणकमल की सेवा करते हैं, ऐसे श्रीरामचन्द्र ने सूर्यकुल रूपी समुद्र में उत्पन्न होकर राक्षस का संहार करने की दिशा में कुशिक वंश के महर्षि विश्वामित्र के द्वारा लाये जाने पर 'आजगव' नामक शैव धनुष को तोड़ा।

ज्ञात्वा ततो भृगुकुलोद्भवधीरवीरं रामं सुगौररुचिरां परिणीय सीताम्।
गत्वा गृहान् गृहपतेः पितुराप्तजायावाचं निशम्य वनवासमगात्सभार्यः॥३४॥

इसके बाद भृगुकुल में उत्पन्न धीर एवं वीर परशुराम को जानकर, सुन्दर एवं गौरवर्ण की सीता से विवाह कर, अपने घर जाकर, गृहपति राजा दशरथ की सबसे प्रिया भार्या कैकेयी के वचन को सुनकर, राम पत्नी के साथ वन गये।

तीर्त्वा गाङ्गपयोऽनुजानुगमनाच्छ्रीचित्रकूटं गिरिं
त्यक्त्वा दुष्टविराधराधदमनो धावन् धनुर्द्धारयन्॥
हत्वा क्रूरसुरेन्द्रवैरिहरिणं मारीचसंज्ञं ततो
लङ्केशाहृतसीतया खलु पुनः प्राप्तो दृशामीदृशाम्॥३५॥

गंगा को पार कर, अनुज भरत के आगमन के कारण चित्रकूट पर्वत को छोडकर, दुष्ट विराध एवं राध का दलन करनेवाले, दौड़ते हुए धनुर्द्धर श्रीराम क्रूर राक्षस रावण के हरिण मारीच नामक राक्षस को मारने के पश्चात् रावण के द्वारा सीता के अपहरण के बाद फिर इस प्रकार की अवस्था में पहुँच गये।

चन्द्रं चण्डकरं प्रचण्डपवनं मेने सुमन्दानिलं
मालां मालतिमल्लिकां शुचिकलां गीतं स्फुलिङ्गायितम्।
इत्येवं वनितापरायणनरं हास्यन्निवालोकयन्
ऋक्षं मन्मथसायकाहृतमनो रेमे प्रियाशङ्कया॥३६॥

वे चन्द्रमा को सूर्य, मन्द वायु को प्रचण्ड झंझावात, मालती की माला को अग्नि की लपट तथा संगीत को आग की चिनगारी मानने लगे। इस प्रकार स्त्री के प्रति आसक्त मनुष्य पर हँसते हुए जैसे देखते हुए कामदेव से पीड़ित चित्त वाले वानरराज को अपने प्रिय के समान मानते हुए रहने लगे।

हत्वा वानरराजवालिनमहा मित्रेण सेतुं ततो
वध्वा वारिधिमातरत्तरतमं साकं प्लवङ्गैर्मुदा।
छित्वा राक्षसयक्षलक्षममला सीता सपुत्रानुजं
लङ्केशं ज्वलदग्निना भगवता चाप्ता पुनः सा पुरी॥३७॥

अहो, वानरराज बाली को मारकर, मित्रों की सहाता से सेतु को बाँधकर, वानरों के साथ प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र ही समुद्र को पार कर गये। लाखों राक्षसों, यक्षों को एवं रावण को मारकर भगवान् अग्निदेव से निर्मल चरित वाली सीता को पाकर, फिर अपनी पुरी अयोध्या पहुँच गये।

सूर्यादिशक्तिमविहृत्य शशास भूमिं गोविप्रप्राज्ञपरिसेवनसर्वधर्मः।
उद्रिक्तभक्तिनमितानननयत्सनाथान् सर्वान् वनाधिवसतः स्वपदं सुशान्तम्॥३८॥

सूर्य आदि की शक्ति संकलित कर गाय, विप्र एवं विद्वान् की सेवा को अपना सकल धर्म समझनेवाले श्रीराम ने भक्ति के प्रवाह से झुके हुए सभी वनवासियों को सनाथ करते हुए अपने स्थान अयोध्यापुर को शान्तिपूर्ण बनाया।

तस्यानुजो भरतसंज्ञ उदारबुद्धी रामाज्ञया निजगृहे निवसन्नपि श्रीम्।
त्यक्त्वा वनस्थव्रतवानभवत्ततो वै गन्धर्वकोटिमथनं विहरँश्चकार॥३९॥

उदार बुद्धि वाले छोटे भाई भरत, श्रीराम की आज्ञा से अपने घर में रहते हुए भी लक्ष्मी का परित्याग कर वानप्रस्थी की तरह नियमों के पालक वने और उन्होंने करोड़ों गन्धर्व का दलन करते हुए अर्थात् रजोगुण का त्याग करते हुए विहार करते रहे।

श्रीलक्ष्मणस्तदवरो वनमेत्य रामं सीतां निषेच्य तपसा बहुकष्ट आसीत्।
बाह्येऽपि चास्य वचसा वनमेत्य देहं सन्त्यज्य तत्पदमगादरिसैन्यवह्निः॥४०॥

उनसे भी छोटे भाई, शत्रु की सेना के लिए अग्निके समान तेजस्वी लक्ष्मण ने वन जाकर श्रीराम एवं सीता की सेवा करते तपस्या से बहुत कष्ट उठाया। बाद में भी श्रीराम के वचन से वन जाकर अपना शरीर त्यागकर उसी श्रीराम के धाम को गये।

शत्रुघ्नसंज्ञ उरुविक्रमशुद्धबुद्धिः शौर्येण दपर्दलनो द्विषतां दयालुः।
दीनेषु दैत्यलवणान्तक आर्य्यसेवी स्वान्येषु साम्यमतिराजनताभिरामः॥४१॥

जंघा के बली और शुद्धि बुद्धि वाले, अपने पराक्रम से शत्रुओं का संहार करने वाले, दीनों के प्रति दया करनेवाले, लवण नामक राक्षस को मारनेवाले, आर्यजनों की सेवा करनेवाले, अपने और पराये के बीच समानता रखनेवाले शत्रुघ्न राजा के गुणों से परिपूर्ण एवं सुन्दर थे।

प्रस्तुति एवं अनुवाद- भवनाथ झा

हनुमत्-स्तुति

(मत्तगयंद छंद)

ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽऽ

ख्यात महाबल नाम पुरातन, संकट मोचन है यश तेरा।
भेद चराचर जान यथामति, वक्ष सुवासित रामक डेरा।
ज्ञानक पुंज, गुणी बल आकर, शिष्ट, गरिष्ठ गभीर चितेरा।
सिद्धि समस्त वसा उर भीतर रक्ष विनाशक, ऋद्धि बसेरा।

अंजनि गर्भ प्रसूत, सदा सुख दायक हो तुम तेज विधर्त्ता।
रामक पुण्य पराक्रम हो तुम, रामक दूत, हठी, शुभ कर्त्ता।
रामक नाम सदा मुख ऊपर, राम अराधक के भय हर्त्ता।
दूर करो मम आपद-वापद, दो सुख-संपद हे जग भर्त्ता॥

देख महा यह जीवन संगर, घोर निराश भरा रहता हूँ।
सूख रहा जल ताल, सरोवर, मीन बना अकुला डरता हूँ।
चैन न रात-दिवा उर अन्तर, पंथ न, पांथ बना अटता हूँ।
पाश लिए यम दूत खड़ा लख, मौन हुआ फटता रहता हूँ।

गर्जित है यह घोर समंदर, नर्तित नौ जल मध्य खड़ी है।
नागर-डागर हैं सब ओझल, मृत्यु तनी नजदीक अड़ी है।
डूब रही तरणी जल भीतर, धुंध भरी अब धैर्य घड़ी है।
साँस रही उखड़ी-उखड़ी चल, जीवन आस बड़ी बिगड़ी है।

वीर, बली, विभवाकर विश्रुत, विभ्रम वारक, काम घनेरे।
वज्र शरीर, निशाचर नाशक, दुष्ट निवारक, अद्‌भुत तेरे।
आ, सब संकट दूर करो, सुरसा मति मारक, रूप बसेरे।
बारम बार पुकार रहा मन, जाउँ कहाँ बिनु 'सुन्दर' हेरे।

🖃 सुरेश चन्द्र मिश्र

देवी–पूजन में सर्वोत्तम नैवेद्य का विवेचन

भवनाथ झा

किसी भी देवता की उपासना में नैवेद्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। निवेदन करने योग्य पाँच प्रकार की वस्तुओं को नैवेद्य कहा गया है। 'कालिका–पुराण' के 70वें अध्याय में नैवेद्य की व्याख्या इस प्रकार की गयी है:–

निवेदनीयं यद् द्रव्यं प्रशस्तं प्रयतं तथा।
तद् भक्ष्याद्यं पञ्चविधं नैवेद्यमिति गद्यते॥

यद्यपि देवी की उपासना में अनेक प्रकार के नैवेद्यों की चर्चा शास्त्रों में है, किन्तु यदि किसी एक नैवेद्य का चयन करना हो जो शास्त्र एवं परम्परा दोनों ही दृष्टि से सर्वात्तम हो तो देवी के लिए नैवेद्यों में परमान्न अर्थात् पायस या खीर का नाम सबसे पहले आयेगा।

सब जानते हैं कि मिथिला में घर-घर में देवी की उपासना होती है और विशेष अवसरों पर भी उन्हें "पातरि" देने की परम्परा है, जिसमें खीर का भोग लगाया जाता है। यहाँ तक कि मिथिला के लोग भगवती को भोग लगाये विना खीर खाते भी नहीं हैं। जहाँ ऐसी सुदृढ़ परम्परा हो वहाँ देवी के लिए सर्वोपरि नैवेद्य रूप में स्वतः पायस का नाम सामने आयेगा।

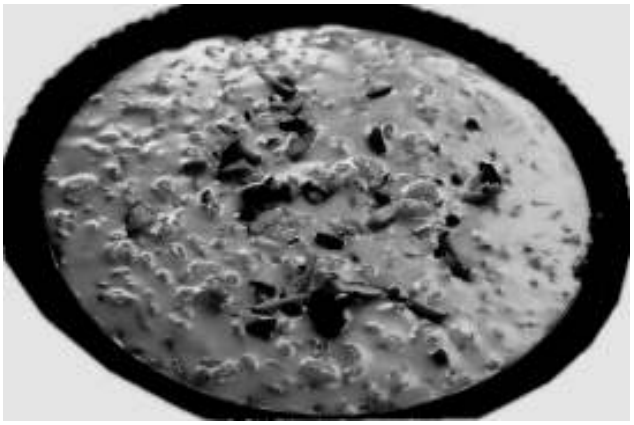

पायस को सर्वोपरि नैवेद्य मानने की इस परम्परा का समर्थन शास्त्र से भी होता है। यहाँ हम कुछ शास्त्रीय प्रमाणों का उल्लेख कर रहे हैं –

कालिका-पुराण लक्ष्मीधर के **कृत्यकल्पतरु** से पूर्व की रचना है। इस पुराण से अनेक उद्धरण **कृत्यकल्पतरु** में उपलब्ध हैं और शाक्त-पूजन की परम्परा में इसका भी अन्यतम स्थान है। इस पुराण के 70वें अध्याय में देवी की पूजा का विशद वर्णन हुआ है।इस अध्याय में ही सबसे पहले फलों के नाम गिनाये गये हैं। इसके बाद अन्नभोग का उल्लेख हुआ है, जिसमें 'परमान्न' का उल्लेख सबसे पहले हुआ है:–

परमान्नं पिष्टकं च यावकं कृशरं तथा।
मोदकं पृथुकादीनि कन्दुपक्वानि चोत्सृजेत्॥१५॥
हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम्।
निवेदयेन्महादेव्यै सर्वाणि व्यञ्जनानि च॥१६॥

यहाँ अन्नभोग में सर्वप्रथम परमान्न का ही उल्लेख हुआ है। इससे पायस की प्रमुखता सिद्ध होती है। परमान्न खीर को कहते हैं। अमरकोष में कहा गया है:- परमान्नं तु पायसः (ब्रह्म वर्ग)

देवी भागवत के अष्टम स्कन्ध के 24वें अध्याय में तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण एवं मास के अनुसार देवी के लिए नैवेद्यों का उल्लेख हुआ है- घृत, कोकरस, तिल, घृत मिश्रित वेसन, मधु (शहद) दही, दूध, मलाई, चूड़ा, लस्सी, दाख़, लड्डू, खजूर, छहोड़ा, घृतमण्ड, चारक, मक्खन, पापड़, मूँग के बेसन का लड्डू, घेवर, अनार, बड़ी, पकौड़ी, गुड़, आम, नारंगी, अनार, बेर, मट्ठा, आँवला, पुआ, खीर, मक्खन, चूड़ा, ककड़ी, चना, कोहरा, नारियल, नींबू, कटहल, कसार (चावल के आटे में गुड़ मिलाकर बनाया गया लड्डू), केला, सूरण (ओल), जामुन आदि। इसमें पायस के साथ साथ अन्य अनेक प्रकार के खाद्य एवं पेय का उल्लेख है, किन्तु इस सूची में एक महत्त्वपूर्ण विचारणीय तथ्य है कि देवी पूजा के लिए सबसे प्रशस्त मास आश्विन में पायस नैवेद्य का ही उल्लेख हुआ है –

श्रावणे दधि नैवेद्यं भाद्रमासे च शर्करा।
आश्विने पायसं प्रोक्तं कार्तिके पय उत्तमम्॥४०॥

शंकराचार्य ने भी देवी की **'मानसोपचार-पूजा'** में नैवेद्य-अर्पण के विषय में लिखा है:-

मातस्त्वां दधिदुग्धपायसमहाशाल्यन्नसंतानिकाः
सूपापूपसिताघृतैः सवटकैः सक्षौद्रम्भाफलैः।
एलाजीरकहिङ्गुनागरनिशाकुस्तुम्भरीसंस्कृतैः
शाकैः साकमहं सुधाधिकरसैः संतर्पयाम्यर्चयन्॥३०॥
सापूपसूपदधिदुग्धसिताघृतानि
सुखादुभक्तपरमान्नपुरःसराणिः।
शाकोल्लसन्मरिचिजीरकबाह्लिकानि
भक्ष्याणि भुङ्क्ष्व जगदम्ब मयार्पितानि॥३१॥

इसके अतिरिक्त शंकराचार्य ने **'त्रिपुरसुन्दरीमानसपूजास्तोत्र'** में भी देवी अन्नपूर्णा के हाथ में पायस-पूरित स्वर्णपात्र का ध्यान किया है।

वामेन स्वर्णपात्रीमनुपमपरमान्नेन पूर्णां दधाना-
मन्येन स्वर्णदर्वीं निजजनहृदयाभीष्टदां धारयन्तीम्।
सिन्दूरारक्तवस्त्रां विविधमणिलसद्भूषणां मेचकाङ्गीं
तिष्ठन्तीमग्रतस्ते मधुमदमुदितामन्नपूर्णां नमामि॥१११॥

आगम-परम्परा में पायस हविष्य के रूप में अनेक स्थलों पर व्यवहृत है। बौधायन गृह्यसूत्र में दुर्गापूजा के विधान में 'पायसेन जुहुयात्' कहा गया है। अतः पायस की प्रमुखता सर्वत्र मान्य है।

अब हम मिथिला की शास्त्रीय परम्परा को देखें। वहाँ भी नैवेद्यों में पायस को सर्वोपरि माना गया है। महाकवि विद्यापति ने **'दुर्गाभक्तितरंगिणी'** में नैवेद्य का पर्याप्त विवेचन किया है। सर्वप्रथम अन्न नैवेद्य में वे लिखते हैं:-

''अन्नं पायसपिष्ठकपूरिकापूपभक्तमण्डक-प्रभृति सिद्धान्नम्।''

यहाँ भी सर्वप्रथम पायस का उल्लेख सबसे पहले हुआ है। इसी प्रकरण में उन्होंने लिखा है-

पायसं घृतसंयुक्तं शर्करासहितन्नरः।
यः प्रयच्छति दुर्गायै तस्य राज्यं करे स्थितम्॥

पायस नैवेद्य की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने **कालिकापुराण** के वचन को भी उद्धृत किया है:-

आमिच्छा परमान्नं च दधि चापि सशर्करम्।
महादेव्यै निवेद्यैव वाजिमेधफलं लभेत्॥

मिथिला में शक्ति-पूजन की परम्परा में म.म. देवनाथ ठाकुर का अन्यतम स्थान है। **'तन्त्र-कौमुदी'** एवं **'मन्त्र-कौमुदी'** उनके दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। उन्होंने **मन्त्रकौमुदी** के 22वें प्रकरण में नैवेद्य के सम्बन्ध में लिखा है-

सौवर्णे राजते ताम्रे कांस्ये रत्नादिनिर्मिते।
पात्रे निधाय नैवेद्यं मृदु सोष्णं सुपाचितम्॥
स्वादूपदंशं विमलं पायसं सद्दृशर्करम्।
कदलीपनसाम्राणि दधि दुग्धं प्रपानकम्॥ 164-165

मिथिला में रत्नपाणि कृत **'कृत्यसागर'** भी परम्परा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यहाँ भी कहा गया है-

अथ देव्यै किं किं वस्तु देय मित्याह-कालिकापुराणात्।
नाङ्गलं क्रमुकं दत्वा रुचकं करमर्दकम्।
सौभाग्यमतुलं प्राप्य देवीलोके महीयते॥
परमान्नं पिष्टकञ्च यावकं कृशरं तथा।
मोदकं पृथृकादीनि कन्दुपक्वानि चोत्सृजेत्॥
हरिशाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम्।
निवेदयेन्महादेव्यै सर्वाणि व्यञ्जनानि च॥
क्षीरादीन्यथ गव्यानि माहिषाणि च सर्वशः॥

नाङ्गलं=नारिकेलम्। क्रमुकम्=गुवाकम्। रुचकम्=बीजपूरम्। कमर्दकम्=पानीयामलकम्। कन्दुपक्वम्= जलं बिना केवलपात्रे यद्वह्निना पक्वम्।

इस प्रकार अनेक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध होता है कि पायस देवी की आराधना में सर्वोपरि नैवेद्य है।

❖

वैष्णव सन्त तुलसीदास की अन्तर्यात्रा

डॉ. राजेश्वर नारायण सिन्हा

युगद्रष्टा गोस्वामी तुलसीदास ने जहाँ एक ओर भक्ति की भागीरथी बहायी तो दूसरी ओर वेदान्त-दर्शन के गूढ सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया। अपनी रचना वैराग्य-संदीपनी के मात्र ६२ छन्दों में उन्होंने साधना के जिन सिद्धान्तों का सूक्ष्म विवेचन किया है, वह धरातल के मनुष्य से दिव्य बन जाने की प्रक्रिया है, पद्धति है। गोस्वामीजी कैसे मनुष्य से दिव्य बन गये, उनकी यह अन्तर्यात्रा इस छोटी-सी पुस्तिका में प्रकट हुई है। तुलसी साहित्य की इस अल्पविवेचित महनीय कृति 'वैराग्य-संदीपनी' पर यहाँ वयोवृद्ध विद्वान् डा. राजेश्वर नारायण सिन्हा की लेखनी में चर्चा प्रस्तुत है। -सं.

सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास की अन्तर्यात्रा रामोन्मुखी होने की दिशा में प्रवहमान रही। बाल्य-काल में देहयात्रा के बहिर्मुख पक्ष की कुछ अनुभूतियाँ इस प्रकार दृष्टिगोचर होती हैं-

१. मातु पिता जग ज्याइ तज्यो, विधि हूँ न लिखी कछु भाल भलाई।

२. जानत हौं चारि फल चारि हूँ चलक को।

३. माँगि के खइबो मैं सीत में सोइबो, लेबे के एक न देबे के दोऊ।।

४. धूत कहौं अवधूत कहौं, रजपूत कहौं, जोलहा कहो कोऊ।
काहू के बेटा सों बेटी न ब्याहब, काहू के जात बिगार न ओऊ।।

ये जीवन की परिस्थितियों के चित्र हैं। पर उनकी सोच बदली। वे परम धार्मिक राम भक्त हो गये।

धर्म की तीन धाराएँ होती हैं- ज्ञान, कर्म और भक्ति। ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय की एकता है। यह कृपा-साध्य है। **"सोइ जानइ जेहिं देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तम्हहिं होइ जाई''।**

कृपा-प्राप्ति के लिए कर्म हैं- नाम, रूप लीला और धाम तथा प्रभु गुणों में अनन्य आस्था। इसमें इन्द्रिय विकारों का दमन और नाम जप के द्वारा मन को तन्निष्ठ करना साधक की तन्निष्ठ अन्तर्यात्रा का संकल्प है। इस संकल्प की कार्यरूप परिणति के लिए गोस्वामीजी ने नाम-साधना का एक पद 'विनय-पत्रिका' में लिखा है- **"राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा। राम नाम नव नेह मेंह को, मन हठि होहु पपीहा।।"**

नाम-साधना की तीन क्रियाएँ हैं।**"मनसा राम राम में रमणा''**। इस क्रिया में अघोष ध्वनि का ध्यान वर्ण-सिद्धि में तल्लीनता लाती है। रमण में समाधिस्थ होकर काल-मान की समाप्ति अनुराग के प्रलम्बन तक चलती है। जब जागृति होती है तब रटन की क्रिया चलती है। इस रटन को जप-विधान में समाहित करके अजपा राग में निमज्जित आत्मा राम रस का छक कर आस्वादन

करती है। तुलसीदास ऐसे ही साधक थे जिन्होंने अपनी समस्त ज्ञानेन्द्रियों को राममय बना लिया था। उन्हीं के शब्दों में -

सियाराम को रूप अगाध, अनूप, बिलोचन मीनन को जलु है।
स्रुति राम कथा, मुख राम को नाम हिये पुनि रामहि को थलु है।
गति रामहिं सों मति रामहिं रों गति राम सों रामहिं को बलु है।
सब की न कहैं तुलसी के मते इतनों जग जीवन को फलु है। (कवितावली)

इस अवस्था की प्राप्ति में उन्हें जीवन के 72 वर्ष 9 महीने 2 दिन लगे-

संवत् सोलह सौ इकतीसा। करौं कथा हरि पद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवध पुरी यह चरित प्रकासा।।

यह मानस की रचना का काल है। इसके पूर्व इन्होंने अपनी प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास-साधना से शिवोपम मानस प्राप्त कर लिया था। पार्वती के चौदह प्रश्नों को सुनकर शिवजी सायं ध्यान-रस में दो दण्ड तक मग्न हो गये थे। उनके हृदय में पूरा रामचरित क्रमबद्ध हो गया। तब उन्होंने रामचरित का वर्णन आरम्भ किया। तुलसीदास ने शिव की कृपा पाकर समशीलता अर्जित की। उनकी आत्मस्वीकृति है-

सुमिरि सो नाम राम गुण गाथा। करौं नाइ रघुनाथहिं माथा।
मोरि सुधारिहिं सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती।

तुलसी-मानस में रामरमण की निरन्तरता केवल सन्तत्व-प्राप्ति के लक्ष्य से उत्पन्न होती है। सन्त क्या सोचते हैं। अपने मानस को सन्तत्व की निष्ठा में प्रगत करने के लिए उन्होंने 'वैराग्य-संदीपिनी' नामक लघु पुस्तिका लिखी है। परम भागवत सन्त हृदय हनुमान प्रसाद पोद्दार का आत्मनिवेदन इस प्रकार है-

"प्रात:स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज का छोटा-सा ग्रन्थ '**वैराग्य-संदीपिनी**' है। इसमें कुल 62 छन्द (दोहे, चौपाई, सोरठे) हैं। जिनमें भगवान् श्री राम की वंदना,उनके स्वरूप का निरूपण और **वैराग्य-संदीपिनी** ग्रन्थ की प्रशंसा है। पुस्तक-लेखन की योजना बनाते समय इसमें मीमांसकों की शैली अपनाई गई है। तात्पर्य-निर्णय के लिए मीमांसकों का सूत्रवाक्य है-

उपक्रमोपसंहारो अभ्यासो नव्यता फलम्।
अर्थवादोपपत्तिश्च लिंगतात्पर्यनिर्णये।।"

आरम्भ, उपक्रम से और अन्त, उपसंहार से किया जाता है। दोनों के मध्य अभ्यास (उपक्रम के विषय को स्पष्ट करना) नव्यता (नयी बात) फल, अर्थवाद और उपपत्ति ये सात साधन तात्पर्य के हैं। आरम्भ के सात दोहे इसी क्रम से हैं। तुलसीदास अपने अध्यात्म ज्ञान का सार आरम्भ में रखकर अगले प्रकाशों में गतिमान होते हैं। इस ग्रन्थ का उपक्रम आत्मभाव के अभिव्यञ्जन से किया जाता है।

राम वाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यान मय, सुर बस तुलसी तोर।।१।।

इस उपक्रम का केन्द्रीय भाव अभ्यास रूप में पुनरावृत्त है।

तुलसी मिटै न मोह तम, किएँ कोटि गुन ग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं, विनु रवि कुल रवि राम।। २।।

आगे नयी बात कहते हैं-

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु,रसना बिनु रस लेत।
वास नासिका बिनु लहै, पट से विना निकेत।। ३।।

यह परमात्मा के दिव्य रूप का ज्ञान तन्मात्राओं के धर्म की दिव्यता के रूप में कहा गया है।

अगला दोहा 'फल' कहा गया है। दिव्यार्थ स्थापन के द्वारा वेदान्त, वेद्य रूप में गुणातीत परमात्मा के धर्म कहे गये हैं। परमात्मा के लीला-तन की चर्चा इस सोरठे में है। इसी फल पर भक्ति की साधना चलती है।

अज अद्वैत अनाम, अलख रूप गुन रहित जो।
माया पति सोइ राम, दास हेतु नर तन धरेउ।।४।।

परमात्मा का परिचय देकर जीव का कर्ममय स्वरूप अर्थवाद तुलना के द्वारा कथ्य का अभिव्यञ्जक है-

तुलसी यह तनु खेत है, मन बच कर्म किसान।
पाप, पुण्य द्वै बीज हैं, बबै सो लवय निदान।।५।।

उपपत्ति, यानी मूल बात निष्कर्षत: कही गयी है-

तुलसी यह तन तबा है, तपत सदा त्रैताप।
सांति होय जब सांति पद, पाबै राम प्रताप।।६।।

उपसंहार इस प्रकार किया गया है-

तुलसी वेद-पुरान मत, पूरन सास्त्र विचार।
यह बिराग संदीपिनी, अखिल ज्ञान को सार।।

यह अंश तुलसी-मानस की अन्तर्यात्रा का प्रथम पड़ाव है।

पूरा ग्रन्थ निबन्ध-शैली में है। कवि जो कहना चाहते हैं उसे शीर्षकों में बाँधते हैं।

राम प्रताप के साधक दु:ख सुख से उपरत होकर शान्त रहते हैं। शान्त मन सन्त कहे जाते हैं। सन्त कैसे परखें जाँय, तुलसी दास अपना अन्तर्मन उनके स्वरूप चिन्तन की बीथि पर प्रगत करते हैं। यह चिन्तन 'तुलसी' भणिति के साथ दोहा, चौपाई, सोरठा में लिखा गया है। यह लोक के लिए प्रवचन नहीं है। अंग्रेज निबन्धकार बेकन कहते हैं- 'प्रवचन कर्त्ता अपना अहंबोध के साथ श्रोताओं को अल्पज्ञ समझते हैं।' इसलिए प्रगल्भ सलाह अग्राह्य होता है। लोग एक कान से सुनते हैं और दूसरे कान से निकाल देते हैं। इसलिए इस ग्रन्थ की शैली मन बोध की रखी गयी है। तुलसी पद जहाँ-जहाँ आया है वह उनके जीव भाव को मन के शिव भाव से मण्डित करने का लक्ष्य है।

'सन्त- स्वभाव-वर्णन' प्रथम प्रकाश है। सन्त मन, वचन, कर्म से तन द्वारा पुण्य की खेती करते हैं और दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापों से मुक्त होकर शान्तिपद की प्राप्ति के लिए श्री राम की कृपा प्राप्त करते हैं। यही सन्त का स्वभाव है। अगले छब्बीस छन्दों (दोहा, चौपाई, सोरठा) में इस पर प्रकाश डाला गया है।

प्रथमतः वचन की खेती दर्शाया गया है।

सरल वचन, भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि।
तुलसी सरलै सन्त जन ताहि परै पहिचान।।८।।

इसके बाद सन्त मन और कर्म का वर्णन है-

अति शीतल, अति ही सुखदायी। सम दम राम स्वजन अधिकाई।।
जड़ जीवन को करै सचेता। जग मँह बिचरिहैं एहि हेता।।९।।

यहाँ पुण्य की रेती का वर्णन है। कहा गया है-

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्।
परोकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

ऊपर के वर्णन में मन, वचन और कर्म से पुण्य करनेवाले सन्त का स्वभाव कहा गया है। तुलसीदास सन्त मण्डलीपर अपना अनुभव व्यक्त करते हैं-

तुलसी ऐसे कहुँ कहूँ, धन्य धरनि वह सन्त।
पर काजे परमारथी प्रीत लिए निबहंत।।

ये संयमी होते हैं, इन्हें विचारयुत सन्त कहा गया है।

की मुख पट दीन्हैं रहै, जथा अर्थ भासंत।
तुलसी या संसार में सो विचार युत सन्त।।११।।

ऐसे सन्तों के अन्य स्वभाव भी हैं-

बोलै वचन विचारि के, लीन्हें सन्त स्वभाव।
तुलसी दुख दुरवचन के, पंथ देत नहिं पाँव।।१४।।

और भी-

सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनैं नहि काहु।
तुलसी यह मत सन्त को, बोलै समता माहि।।१३।।

ऐसे सन्तों की विशेशता इस प्रकार कही गई है-

अति अनन्य गति इन्द्रिय जीता। जाकी हरि बिनु कतहुँ न चीता।।
मृग तृष्णा सम जग जिय जानी। तुलसी ताहि सन्त पहिचानी।।१४।।

इस प्रकार के आचार-दर्शन की अनुगति पर आत्म लब्धि बताते हैं-

एक भरोसे, एक बल, एक आस बिस्वास।
राम एक स्वाती जलद, चातक तुलसीदास।।१५।।

इस प्रकार की साधनात्मक बुद्धि की उपज है तुलसीदास का आत्मतोष। इस आत्मतोष में चारित्रिक उच्चता का गठन कैसे होता है, इसपर तुलसीदास कहते हैं-

सो जन जगत महान है, जाके राग न दोष।
तुलसी, तृष्णा त्याग कै, गहै सील सन्तोष।।१६।।
सील रहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम।
तुलसी रहिए एहि रहनि, सन्त मनन को काम।।१७।।

निज संगी निभ राम करत, दुरलभ मन दुख दून।
मलयानिल हैं सन्त जन, तुलसी दोस बिहून।।१८।।

अपना प्रभाव बढ़ाकर समाज में अपने समान लोगों की बढ़त करनेवाले सन्तों के आचरण से दुर्जनों का दुख दूना हो जाता है। उनके मानस में किसी का उत्कर्ष स्वयं देखना अच्छा नहीं लगता है। इसी कारण उनका दुख दुगुना हो जाता है। सन्त मलयानिल के समान हैं, जो अपने गुन से सुगन्ध का वास सभी जनों में करते हैं।

सन्त-वचन कठोर हृदय को भी पिधला देता है।

कोमल बानी सन्त की, स्रवत अमृतमय आह।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मौन होइ जाय।।१९।।
अनुभव सुख उतपति करत, भव भ्रम धरै उठाइ।
ऐसी वानी सन्त की, जो उर भेदै, आइ।।२०।।
सीतल वानी सन्त की, ससिहूँ ते अनुमान।
तुलसी कोटि तपन हरे, जो कोइ धारै कान।।२१।।

इन उक्तियों में वचन की खेती मन के खेत में दर्शायी गई है। इन गुणों का उत्कर्ष सन्त-वचन में कैसे होता है, देखिए-

पाप, ताप, सब सूल नसाबै। मोह, अंध रवि वचन बहाबै।।
तुलसी ऐसे सदगुन साधू। वेद मध्य गुन बिदित अगाधू।।२२।।

इनके वचनों की खेती की उपज इस प्रकार की गई है।

तन करि, मन करि, वचन करि, काहू दूषत नाहि।
तुलसी ऐसे सन्त जन, रामरूप जग माहिं।।२३।।

सन्तों की शक्ति जन्म-जन्मान्तर कर्म-संस्कार से विकसित है। उनमे तन, मन,और वचन रूपी तानों की शान का प्रभाव इस प्रकार है-

मुख देखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहिं।
वचन सुनत मन मोह गत, पूरूब भाग मिलाहिं।।२४।।
अति कोमल अरु विमल रुचि, मानस में मल नाहि।
तुलसी रत मन होइ रहै, अपने साहिब माहिं।।२५।।

तुलसी की दृष्टि में सन्त वन्दनीय इसलिए हैं कि-

जाकें मन तें उठि गई, तिल-तिल तृष्णा चाहि।
मनसा, वाचा, कर्मना तुलसी बंदत ताहि।।

लौकिक अलिप्ति सन्तों की मानस विशेषता है।

कंचन काचहि सम गनै, कामिनी काष्ठ पखान।
तुलसी ऐसे सन्त मन, पृथ्वी ब्रह्म समान।।२९।।

इसी बात को चौपाई में भासित करते हैं-

कंचन को मृत्तिका करि मानत। कामिनी काष्ट सिला पहिचानत।।

तुलसी भूलि गयो रस एहा। सो जग प्रगट राम की देहा।।२८।।

ऊपर की पंक्तियों में उपमानों का वैशिष्ट्य अन्तर प्रकट करता है। कंचन के लिए काँच और मिट्टी, कामिनी के लिए काष्ट और पाखान के शब्दान्तर से पुनरावृत्ति करके भी प्रतीकोपासना के तत्त्व में अर्थ सौष्ठव का अन्तर है। 27वें छंद में पृथ्वी ब्रह्म और 38 वें छंद में 'राम की देहा' निर्गुण एवं सगुणोपासना की दृष्टि से तुलनीय है। प्रथम में दिव्यार्थक (ब्रह्म) और द्वितीय में दिव्य मानुष्य राम की पवित्रता बोधगम्य बनायी गयी है।

साधना के क्षेत्र में उतरनेवाले साधकों के मानसिक अन्तराय उन्हें भ्रमित कर देते हैं। तुलसी की दृष्टि में ऐसे सन्त विरल होते हैं। प्रसंग समापन के क्रम में कवि की आलोच्य बुद्धि प्रकट हुई है-

अकिंचन, इन्द्रिय दमन, रमन राम इकतार।
तुलसी ऐसे सन्त जन, विरले या संसार।।३९।।

इसकी मन:शास्त्रीय व्याख्या इस प्रकार है-

अहंवाद 'मैं' 'वे' नहीं, इष्टसंग नही ओइ।
दुखते दुख नहीं ऊपजै, सुख ते सुख नही होइ।।३०।।
सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम होइ।
तुलसी या संसार में, कहत सन्त जन सोइ।।३१।।

इस प्रकाश का उपसंहार इस प्रकार कहा गया है-

विरले-विरले पाइए, माया त्यागी सन्त।
तुलसी कामी, कुटिल, कलि, केकी, केक अनन्त।।
मैं तैं मेट्यो मोह तम, ऊग्यो आतप भानु।
सन्त राज सो जानिये, तुलसी या सहिपानु।।३३।

प्रबन्धकता और साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से इन तीस छन्दों का वैशिष्ट्य-दर्शन अपेक्षित है।

इस निबन्ध में आरम्भिक सात छन्द मीमांसकों के तात्पर्य-निर्णय सिद्धान्त पर दृष्ट हुए हैं। कवि ने **"वैराग्य-संदीपिनी"** को अखिल ज्ञान का सार कहा है। अत: सार निरूपण शैली में कवि-मानस अर्थ की सूक्ष्मतम अनुभूतियों को आत्मज्ञान की संगति में देखता है। यह चिन्तन-प्रधान शीर्षक छन्द की दृष्टि से परिपुष्ट है। भाव संचेतन में अर्थगत सूक्ष्मता से कथ्य की संगति अपेक्षित होती है। अर्थ योजना की दृष्टि से इसपर एक झलक अपेक्षित है।

आचार्य राजशेखर ने अपने पूर्वाचार्यों की दृष्टि में अर्थ के तीन स्वरूप का निर्देश पाया। वे हैं, **दिव्य, दिव्यमानुष** और **मानुष**। उन्होंने अपनी दृष्टि से चार और कोटियों का प्रमाण दिया है। **दिव्य-आकाशीय** और **दिव्य-पातालीय** तथा **भव्य-आकाशीय** और **भव्य-पातालीय**। इन सातों प्रभाग के अर्थों के प्रमाण यहाँ द्रष्टव्य है।

दिव्यार्थ- ध्यान में त्रिमूर्त्ति का कथन दिव्यार्थ है। यह कवि की उपास्य दृष्टि है। **'रामचरितमानस'** में गोस्वामी ने श्रीराम के चौदह वासस्थलों का वर्णन किया है- **सुनहु राम मैं कहऊँ निकेता जहाँ बसहु सिय अनुज समेता।** इस उक्ति में त्रिमूर्त्ति के वासस्थान की चर्चा है। यह चर्चा सीता, राम और लक्ष्मण के दिव्य स्वरूप को ध्यान में रखकर की गयी है। इनके दो पक्ष हैं- मन और हृदय।

मन में एक स्थल और हृदय में भी त्रिमूर्त्ति के एक ही स्थल कहे गये है। हृदय में त्रिमूर्त्ति का स्थल ही ध्यान दशा का स्वरूप है। इसका लक्षण इस प्रकार है-

लोचन चातक जिन्ह करि सखे। रहहिं बरस जलधर अभिलाषे।।
निदरहिं सरित सिंधु सरकारी। रूप विन्दु जल होहिं सुखाही।।
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।। मानस 2, 128/6-8।।

यह स्थान निर्देश दिव्यालोक है। इस ग्रन्थ के उपक्रम का अर्थ-वैभव दिव्यार्थक एवं उपास्य बिंब से युक्त है। इसमें **"सुरतरु तुलसी तोर"** का संज्ञा-बन्ध है।

'सुरतरु' आकाशीय उपादान है और दिव्यतरु है। शास्त्र स्वर्ग का होना आकाश में मानते हैं। दूसरे दोहे के तीसरे और चौथे चरण में कहा गया है-

हृदय कमल फूलै नहीं बिनु रविकुल रबि राम।।

यहाँ 'राम' दिव्य मानुष हैं। वे भक्त हेतु अवतरित मानव देही है। उपमान वाक्य में उनके लिए 'रवि' पद रखा गया है यह आकाशीय उपादान है और कमल कीचड़ से उत्पन्न होता है अत: उद्भिज कोटि का है। यह दिव्य पातालीय उपादान है। रवि से इसका संबंध भाव भी दिव्य है।

इसके बाद तीसरे दोहे में दिव्यार्थ है। चौथे दोहे में दिव्य मानुष रूप में राम कहे गये हैं। पाँचवे दोहे में मानुष्यार्थ है। तन खेत है। यह मानुष्य प्राणी है। इसके उपमान खेत और कर्म गृहस्थी है। इसके बीज भी भव्य रूप में कहे गये हैं जो पातालीय (बीज का उगना उद्भिजार्थक) है। उद्भिज अर्थ में भव्य-पातालीय है।

छठे दोहे का अर्थ भी उपमान-भाव में मर्त्यलोकीय है।ताप दिव्यार्थक है जो दैविक दैहिक और भौतिक रूप में प्रारब्ध कर्म के घातक परिणाम हैं।राम-प्रताप दिव्यार्थक है इसकी लब्धि साधना की सिद्धि है। कृपा पद भी दिव्यार्थक है।

इस ग्रन्थ का अर्थ ज्ञान-दान है। सन्त के अर्थ दिव्य मानुष्य तत्त्व से सम्बद्ध हैं। दिनकरजी के शब्दों में- **तप से मनुज दिव्य बनता है, जड़ विकार से लड़ता है।** सन्तत्व की साधना इसी दिव्यता की मानस-भूमि का सूक्ष्मार्थक संयोजक है। कवि ने सहमति के बिन्दुओं की भी कई कोटियाँ निर्धारित करके कहीं 'ब्रह्म' और कहीं 'राम' पद को उपमान रूप में संयोजित किया है। काव्यार्थ अभिव्यञ्जन के लिए कवि ने उपमानों प्रतीकों और आध्यात्मिक मान्यताओं का सहारा लिया है।

सन्त-वर्णन-प्रसंग दिव्य-मानस की साधनात्मक उपलब्धि को इतनी सूक्ष्माता से संगति मिलाते हुए लिखा गया है कि पुनरुक्तियों की तरह दीखनेवाले अर्थो में भी कथ्य की सूक्ष्मता को अपेक्षित स्पष्टता दी गयी है। इसके बाद दो और प्रकरण हैं, जिनपर क्रमश: आलोक अपेक्षित है।

(शेष अगले अंक में)

कृतकार्य उपाचार्य
ग्रा. पो. बभनबीघा, जिला-शेखपुरा

❖

रामायणकालीन-राजव्यवस्था

डा. मोना बाला

शिक्षा- स्नातकोत्तर (संस्कृत), पी-एच्.डी., लेखन-*'प्रसन्नराघव एवं रामचरितमानस-एक सम्यक् दृष्टि'* के अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेखों का प्रकाशन।

आदिकवि वाल्मीकि न केवल रामकथा के आदि गायक कहे जाते हैं, अपितु प्राचेतस अर्थशास्त्र के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। वस्तुतः वाल्मीकि–रामायण में अर्थशास्त्र (राजनीति–शास्त्र) सम्बन्धी स्थल इतने प्रभावपूर्ण ढंग से वर्णित है कि केवल उन्हीं श्लोकों का संग्रह पूर्ण रूप से एक शास्त्र बन सकता है। उन्होंने दशरथ, भरत एवं श्रीराम द्वारा शासित देश का विवेचन किया है, जिसे हम रामायणकालीन राजव्यवस्था का नाम दे सकते हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए वाल्मीकि द्वारा प्रतिपादित अर्थशात्र के सिद्धान्तों का एक दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत है।

सम्पूर्ण विश्व में जनसमुदाय ने अपनी सुविधा एवं सुख के लिए राजव्यवस्था का निर्माण किया। कालक्रम से बढ़ती हुई यह व्यवस्था सुसम्पन्न एवं समृद्ध हुई। राजव्यवस्था के शीर्ष पर राजा था, जो सम्पूर्ण राज्य की देख-रेख अपने सामर्थ्य से करता था।

रामायण में मूल रूप से तीन राजवंशों की कथा मुख्य है। इसी के अन्तर्गत अन्य बातें भी आयी हैं। रामायण की कथा का आरम्भ रघुवंशियों से हुआ है। यह कथा रघुवंशी राम की कथा है। रामायण महाकाव्य के नायक वास्तव में राम हैं। दशरथ, जो राम के पिता एवं अयोध्या के राजा हैं, ऐसी अयोध्या को एक सम्पन्न नगरी के रूप में वर्णित किया गया है। दशरथ के राज्य में सम्पूर्ण व्यवस्था का भार उनके आठ निपुण मन्त्री सम्भालते थे।

रामायण काल में दशरथ शासित अयोध्या का वर्णन उनके सुदृढ़ राजव्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत करता है। अयोध्या नगर में कोई दु:खी नहीं था; प्रजा की उत्तम स्थिति थी, जो, किसी भी राज्य विशेष की सम्बृद्धि का कारक है। इस नगर में धर्म, अर्थ और काम का सम्पादन होता था। इस नगरी की स्थिति की तुलना इन्द्र की अमरावती नगरी से की गई है।

तेन सत्याभिसंधेन त्रिवर्गमनुतिष्ठता।
पालिता सा पुरी श्रेष्ठा इन्द्रेणेवामरावती।।

(वा.रा.-1/6/5)

दशरथ की राज्य व्यवस्था में राजमन्त्रियों का प्रमुख स्थान रहा है। मन्त्रियों के गुण की विशद चर्चा इस बात का द्योतक है कि राज्य व्यवस्था की मुख्य बागडोर मन्त्रियों के हाथों में संरक्षित एवं सुरक्षित थी। राज्य व्यवस्था में कुल आठ मन्त्री थे जिनमें आठवें मन्त्री सुमन्त्र थे। इन मन्त्रियों के अलावे दशरथ के राज्य में ऋत्विक् एवं पुरोहितों को भी मन्त्री के रूप में सम्मान प्राप्त था, जिनमें जबालि, गौतम और कात्यायन आदि मुख्य थे। समय-समय पर इन मन्त्रियों के द्वारा भी राज्य व्यवस्था का विषय मुखरित हुआ है। राज्य में कई विद्वानों को

स्थान प्राप्त था जिनके गुण के बारे में रामायण में कहा गया है-

विद्याविनीता ह्रीमन्तः कुशला नियतेन्द्रियाः॥

(वा.रा.-1/7/6 का उत्तरार्ध)

मन्त्रियों के गुण में विशिष्ट था कि उन्हें अनेक अवसरों पर सौहार्द की परीक्षा से गुजरना पड़ता था। ये कर्त्तव्यनिष्ठ थे। अवसर आने पर पुत्र को भी दण्ड देने से हिचकते नहीं थे-

कुशला व्यवहारेषु सौहृदेषु परीक्षिताः।
प्राप्तकालं यथा दण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि॥

(वा.रा.-1/7/10)

ये मन्त्री कोष के संचय तथा चतुरङ्गिणी सेना के संग्रह में लगे रहते थे, जिससे कि राज्य की आर्थिक एवं सैन्य सुरक्षा सदा सुरक्षित रहे। ये मन्त्रिगण सदैव राजनीति में उत्साह एवं शौर्य से भरे हुए थे। ये मन्त्री राज्य के उत्कर्ष हेतु सदैव लगे रहते थे। ये मन्त्री इतने कुशल थे कि राजा के अनुग्रह पात्र थे, साथ ही, पराक्रम के कारण देश-विदेश में ख्याति प्राप्त थे। दशरथ के राज्य के मन्त्री इतने कुशाग्र थे कि राज्य के सारे कण्टक को नष्ट कर देते थे। राज के लिए एक निष्कण्टक राज्य की स्थापना हो गई थी।

राम-सीता विवाह प्रसङ्ग में राजा जनक ने दशरथ को बुलाने हेतु अपने मन्त्रियों को भेजा है। वैसे ही, राम-राज्याभिषेक के सन्दर्भ में सुमन्त को विशिष्ट राजाओं को बुलाने हेतु भेजा गया है। राज्याभिषेक के काल में राजा दशरथ के द्वारा अपने पुत्र एवं भावी राजा को राजनीति की कुछ गूढ़ बात बतायी गई है जिनमें कहा गया है कि मन्त्री सेनापति आदि अधिकारियों एवं प्रजाजनों को सुखी रखना चाहिए दशरथ ने कहा है कि जो राजा कोष का भण्डारण एवं शास्त्रागार आदि के द्वारा उपयोगी वस्तुओं का बहुत बड़ा संग्रह करता है वह जन प्रिय राजा होता है। दशरथ का संकेत अर्थ एवं सैन्य शक्ति की सुदृढ़ता की उद्घोषणा है।

राज्य में दूतों का भी बड़ा महत्त्व था ये केवल राज्य कार्य ही नहीं अपितु राज्य सम्बन्धी निजी कार्यों का सम्पादन भी करते थे दशरथ की मृत्यु पर भरत को लाने के लिए पाँच दूत भेजे गए थे, जिन्होंने केकय नरेश को भरत को अयोध्या ले जाने की आज्ञा माँगी है तथा दूतों के साथ ही भरत अयोध्या आये हैं। विशिष्ठ सभाओं में भी मन्त्री को बुलाने हेतु दूतों को भेजा जाता था।

भरत जब युवराज पद को ठुकराते हैं तथा राम से मिलने वनगमन करते हैं और जब राम से उनकी भेंट होती है तब वे राम को अयोध्या लौटने को कहते हैं, तो राम इस प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं। तथा भरत को राजनीति का उपदेश देते हैं। जिसमें राम के द्वारा कुशल एवं योग्य व्यक्ति को ही मंत्री बनने की बात कही गयी है। राम ने अपने वक्तव्य में इस बात पर जोर दिया है कि राजा अपनी राज्य व्यवस्था हेतु कैसे व्यवहार का सम्पादन करें। राम ने भरत को बताया है कि राजा को देवताओं, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, वृद्ध, वैद्यों और ब्राह्मणों का उचित सम्मान करना चाहिए। मन्त्रणा को ही राजाओं का विजय कारण माना जाता है, लेकिन विश्वसनीय अमात्यों के द्वारा उसे गुप्त रखने पर ही सफलता अर्जित की जा सकती है। राम ने राजा के जीवन में भी अनुशासन के होने की बात कही है। बार-बार राम ने भी कुशल अमात्यों को राज्य व्यवस्था की रीढ़ बताया है। राज्य में चाटुकारों की अपेक्षा बुद्धिमान व्यक्ति को रखना हितकर माना गया है। राम ने कहा है कि अमात्य उन्हें नियुक्त करना चाहिए जो घूस नहीं लेते हो तथा पुरखों के समय से सेवा में हो-

अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहान् शुचीन्।
श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठेषु कच्चित् त्वं नियोजयसि कर्मषु॥

(वा.रा. 2/100/26)

प्रजा के साथ राजा का व्यवहार स्नेहपूर्ण हो। राजाओं को साम, दाम, दण्ड और भेद का उचित प्रयोग करना चाहिए। राजा के द्वारा अपने सेवक एवं सेना का उचित समय पर भत्ता दिया जाना चाहिए। राजदूत की नियुक्ति हेतु राम ने भरत को कहा है कि राजदूत अपने ही देश के विद्वान्, कुशल, प्रतिभाशाली एवं विवेकी हों। अपने राज्य के प्रमुख स्थलों पर गुप्तचरों की नियुक्ति को अनिवार्य बताया गया है।

राजा के लिए कृषि और गोरक्षा की जानी चाहिए, वैश्यों को इष्ट की प्राप्ति में राजा सहयोग करें, तभी आर्थिक समृद्धि आ सकती है। राज्य में स्त्रियाँ सुरक्षित हों। पशुधन की सुरक्षा अच्छे साधनों से की जाए। राम ने दुर्ग, अस्त्रागार, यन्त्र, शिल्पी को धन्य-धान्य से परिपूर्ण होने की बात कही है। कोष को सुपात्र हाथों में दिया जाना चाहिए। न्यायालय में निर्णय पक्षपातपूर्ण न हो इसका राजा को ध्यान रखना चाहिए। राम ने निरपराध व्यक्ति को मिथ्या दोष लगा कर दण्ड देने को अनुचित बताया है तथा कहा है कि निरपराधी के आँसू से राजा के पुत्र एवं राज्य का नाश होता है। बालकों एवं वृद्धों के लिए उचित स्वास्थ्य सुविधा मुहैया करानी चाहिए। राजा को अपनी व्यवस्था के लिए सुनीति का आश्रय लेना चाहिए।

राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा।
महीपतिर्दण्डधरः प्रजानान्।।

(वा.रा.-2/100/76 का पूर्वार्ध)

रामायण में लंकापुरी भी महत्त्वपूर्ण रही है जिसमें रावण का राज्य था। रावण की राजव्यवस्था जानने के लिए सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड के प्रसंगों को लेकर समझा जा सकता है। सुन्दरकाण्ड में हनुमान् लंकापुरी गए हैं तथा सीता अन्वेषण में उन्हें वहाँ की प्रजा की स्थिति का पता लगा है। लंका स्वर्ण की थी अर्थात् अर्थ से पूर्ण तो अवश्य ही रही होगी। लंका का वर्णन हनुमानजी ने श्रेष्ठ नगरी के रूप में किया है। इस नगरी की सुरक्षा-व्यवस्था चकित करनेवाली है। लंका जितनी समृद्ध है उतनी ही सुरक्षित। यह एक सुन्दर राजव्यवस्था की सफलता का संकेत है। नगरी के चारों ओर खाईयाँ हैं जिन्हें उत्पल और पद्म आदि कई जातियों के कमल सुशोभित करते हैं। सीता को विशेष धनुषधरों के द्वारा विशेष सुरक्षा में रखा गया है, वैसे सीता हर कर लायी गयी थी। इस कारण उन पर विशेष निगरानी स्वभाविक है-

समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लंका रावणपालिताम्।
परित्वाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिलंकृताम्।।

(वा.रा.-सु./2/14)

यह लंकापुरी सोने के चदरे से घिरी थी, जो इसकी समृद्धि का परिचायक है-

काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम्।
गृहैश्च गिरिसंकाशैः शारदाम्बुदसंनिभैः।।

(वा.रा.-सु./2/16)

लंकापुरी में बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं पर पताकाएँ लहराती थीं। बाहरी फाटक (प्रवेश द्वार) सोने के थे। लंकापुरी अत्यन्त सुन्दर थी। मयासुर के द्वारा निर्मित लंका उनकी मानसिक संकल्पना से रची गयी एक सुन्दर स्त्री के समान थी। यह वर्णन हनुमान् के विशेष वर्णन-प्रेम का परिचायक है। लंकापुरी में हनुमान् विचार करते हैं कि यहाँ साम से कार्य होना असंभव है अब अन्य शेष तीन का ही प्रयोग यहाँ किया जा सकता है। हनुमानजी उन युक्तियों से लंका निरीक्षण कर रहे हैं कि उनके स्वामी श्रीराम का कार्य न बिगड़े।

रावण के राज्यमन्त्री के सात पुत्रों का वध भी श्रीहनुमान् ने किया है। हनुमानजी को जब इन्द्रजित् के द्वारा राजप्रासाद में लाया गया था तब रावण के राज्य में दूत के साथ उत्तम राजनीति के नियम वाला व्यवहार नहीं हुआ, इस कारण उसकी राज्य व्यवस्था में दोष के बीज दिखाई देते हैं।

तीनों राजवंशों के राज्य व्यवस्था से यह स्पष्ट होता है, कि उस काल में राजा प्रजा एवं उसके अंगों पर बड़ी सूक्ष्मता से कार्य किया जाता था। राजा दयालु होता था तथा अपने राज्य की समृद्धि एवं सैन्य व्यवस्था का विशेष ध्यान रखता था। राज्य की आन्तरिक समृद्धि में आमात्य की मुख्य भूमिका थी तथा बाह्य दृष्टि से राज्य की समृद्धि सैन्य-बल के प्रदर्शन से थी।

रामायणकालीन राजव्यवस्था में अर्थ व्यवस्था अथवा कोष समृद्धि, सैन्य सुरक्षा तथा विदेश नीतियों का बड़ी प्रमुखता से वर्णन प्रस्तुत किया गया है। राज-व्यवस्था में राज्य विशेष की आन्तरिक विधि अथवा नियम में कुछ अन्तर इस बात का संकेत है कि व्यवस्था में यह एक प्रमुख पक्ष था।

राम का काल आदर्श काल के रूप में जाना जाता है, इसका पता राम द्वारा भरत को राजनीति के उपदेश में प्राप्त होता है।

जस्टिस राजकिशोर पथ
न्यू एरिया, कदम कुआँ
❑

लेखकों से निवेदन

2015 ई. से धर्मायण को अपने नये रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है। अगले अंक से शोधपरक आलेख के साथ पाठकों द्वारा मिले सुझावों के अनुरूप कुछ स्थायी-स्तम्भ भी प्रकाशित किये जायेंगे। इन स्थायी-स्तम्भों का स्वरूप इस प्रकार है:

1. **नमसा विधेम**- संस्कृत के श्लोकों में देवस्तुति, हिन्दी अनुवाद सहित, अप्रकाशित 2. **देवस्तुति**- हिन्दी में छन्दोबद्ध प्राचीन अथवा आधुनिक भक्तिपरक कविताएँ। 3. **शोधपरक आलेख** 4. **प्रेरक-पुरुष**। सन्तों, महापुरुषों की जीवनी। 5. **प्रेरक-प्रसंग** 6. **अलौकिक अनुभूति** 7. **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**। आयुर्वेद से घरेलू नुस्खे 8. **ज्योतिष-चर्चा** 9. **आस्था के केन्द्र** 10. **संस्कृत भाषा-परिचय** 11. **धार्मिक शंका-समाधान** 12. **धार्मिक पुस्तक समीक्षा** 13. **धरोहर** 14. **पाठकीय प्रतिक्रिया** 15. **तीर्थयात्रा-वृत्तान्त।**

अत: सुधी लेखकों से निवेदन है कि उक्त स्तम्भों के लिए अपने मौलिक तथा अप्रकाशित अप्रसारित आलेख हमें प्रेषित करें। रचनाओं की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। आपकी रचनाओं में राजनीति की कोई बात नहीं होनी चाहिए। सामाजिक सद्भाव, धार्मिक उदारता, भारतीय गरिमामयी संस्कृति आदि की झलक हमारी पत्रिका की पहचान है। टंकित या हस्तलिखित रचनाएँ स्वीकार्य हैं। टंकित आलेख mahavirmandir@gmail.com पर भेज सकते हैं। लेखक अपना फोटो एवं साहित्यिक परिचय अवश्य भेजें। यदि आलेख में कोई फोटो डाला गया हो तो उसका .jpg फाइल ईमेल से अवश्य भेजें। रचनाओं के लिए मन्दिर की ओर से सम्मानकी की व्यवस्था है। अपना पत्राचार पता अवश्य लिखें।

इनके अतिरिक्त 'धर्मायण' के पाठक नियमित रूप से **महावीर मन्दिर समाचार परिक्रमा** से भी अवगत होते रहेंगे।

तुलसी का युगबोध एवं सामाजिक आदर्श

-राकेश चन्द्र मिश्र 'विराट्'

साहित्य समाज का दर्पण होता है या दिशा-निर्देशक, यह विवाद अतीत से चलता रहा है। यह विवाद भी उस तथ्य से जुड़ा है कि हम साहित्य को यथार्थ के रूप में देखना चाहते हैं या आदर्श के रूप में। यदि साहित्य केवल यथार्थ का वर्णन करता है तो वह आईना की तरह समाज का प्रतिबिम्ब मात्र दिखा देता है। ऐसा साहित्य कालजयी नहीं होता। वस्तुतः साहित्य का काम दिशा-निर्देशक का होता है। जो आज का यथार्थ है वह कल बदल सकता है किन्तु हमारी स्वस्थ अवधारणाएँ बदल नहीं सकतीं। सचमुच आदर्श कालातीत है सनातन है। गोस्वामी तुलसीदास ने आदर्श को दिखाने का काम किया है। कुछ रचनाओं में उन्होंने यथार्थ का भी वर्णन किया है, पर दिशा-निर्देश के साथ ही। हम कहाँ हैं और हमें कहाँ जाना है- ये दोनों गोस्वामीजी के कथ्य हैं। इसी सन्दर्भ में तुलसी-साहित्य में यथार्थ तत्त्व को उकेरती यह रचना प्रस्तुत है। - सं.

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियाँ यथातथ्य वर्णित हैं। श्रीरामचरितमानस में कविकाल का वर्णन अथवा कवितावली, गीतावली, दोहावली में सामाजिक दुर्दशा का निरूपण वस्तुतः उस समय का युगबोध ही है। भ्रष्ट शासन-व्यवस्था और निरीह प्रजा का शोषण देखिए-

'नृप पाप परायन धर्म नहीं।
करि दण्ड विडम्ब प्रजा नित हीं।।''

तुलसी ने जिस युग में काव्य-रचना की वह मुगलकाल था। **कवितावली** की अधोलिखित पंक्तियाँ तत्कालीन स्थिति का स्पष्ट परिचय देती हैं-

'खेती न किसान को भिखारी
को न भीख भलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविकाविहीन लोग
सीद्यमान सोच बस
कहैं एक एकन सौं कहाँ जाइ का करी।'

समाज में ऊँच-नीच का भेद, सभी वर्ण वालों से स्वधर्म पालन की विवश-अक्षमता, ब्राह्मणों का वेद-विरोधी होना, ज्ञानियों का अपमान तथा मिथ्या बकवादियों का सम्मान, मिथ्याडम्बर फैलानेवालों को सन्त की मान्यता... कितनी विकट विडम्बना।।

'द्विज स्रुति बेचक भूप प्रजासन।
कोउ नहिं मान नियम अनुशासन॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा।
पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यादंभ दंभ रत जोई।
ता कह संत कहइ सब कोई॥

गुरु-शिष्य का पावन संबंध इस युग में बहरे और अंधे की तरह हो गया है। एक सुन नहीं पाता, दूसरा देखने की क्षमता खो बैठा है। तुलसी ऐसे अधम गुरुओं को नरकगामी मानते हुए कहते हैं-

गुर सिष अंध बधिर कर लेखा।
एक न सुनइ एक नहिं देखा॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई।
सो गुर घोर नरक महँ परई॥

नारियों की दयनीय दशा भी तुलसी की दृष्टि से छुपी नहीं है। शासकों की रूप लिप्सा की अभिवृद्धि, उनके द्वारा नारी को मात्र भोग्या मानना, समस्त लोगों का नारी के वशीभूत होकर मरकट की नाईं नाचना, आभूषण रहित सुहागिनें, विधवाओं को नित नवीन शृंगार-परिधान से सज्जित होना, देखिए तुलसी का युग बोध-

नारि बिवस नर सकल गोसाईं।
नाचहिं नट मरकट की नाईं॥
सौभागिनी विभूषन हीना।
विधवन्ह कर सिंगार नबीना॥

तपस्वी, धनी और गृहस्थ, दरिद्र पुत्र भी माता-पिता के आज्ञानुवर्ती तभी तक हैं, जब तक वैवाहिक बंधन में बँध नहीं जाते। प्रिया-मुख-दर्शन होते ही ससुरालीजन प्रिय लगने लगते हैं और कुटुंबीजन शत्रु।

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं।
अबलानन दीख नहीं जब लौं॥
ससुरारि पिआरि लगी जब तें।
रिपु रूप कुटुम्ब भए तब तें॥

पुरुषों में वासना वृत्ति का प्राधान्य। उनके द्वारा कुलवंती नारियों का घर-निकाला और दासियों को रखैल बना कर रखना। किसी के द्वारा भी बहिन और पुत्री के पवित्र संबंध पर विचार नहीं किया जाना-

कुलवंति निकारहिं नारि सती।
गृह आनहिं चेरि निबेरि गती।
कलिकाल बिहार किए मनुजा।
नहिं कोउ गनै अनुजा तनुजा॥

कहीं भी संतोष नहीं है और कहीं भी शीतलता नहीं। ईर्ष्या, अहंकार, कठोर वाणी और लालच ने सर्वत्र घर कर लिया है। परिवार और समाज विशृंखलित हो रहे हैं। माता-पिता बालकों को केवल उदर पूर्ति का धर्म सिखा रहे हैं और थोड़े-से धन के लिए गुरु एवं ब्राह्मण का वध करने में भी लोगो को संकोच नहीं है। तत्कालीन युग के साधु-सन्यासियों की लोभ वृत्ति का उल्लेख देखिए-

बहुदाम सँवारहिं धाम जाती।
विषया हरि लीन्हि न रहि विरती॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही।
कलि कौतुक तात न जात कही॥

उस समय प्रजा की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। बार-बार दुर्भिक्ष की विनाश लीला... अन्नाभाव में प्रजा का क्षुधा-नाद-

कलि बारहिं बार दुकाल परै।
बिनु अन्न दुःखी सब लोक मरै॥

तुलसी कहते हैं- लोग पेट के लिए ही अपने बेटा-बेटी बेचने को विवश हैं, पेट के लिए ही ऊँचे-नीचे कर्म कर रहे हैं और धर्म-अधर्म का ख्याल किए बिना धंधे में लगे

हुए हैं। सचमुच पेट की आग समुद्र की आग से भी अधिक प्रबल है। कवितावली की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागिनें बड़ी है आग पेट की॥

दरिद्रता रूपी दशानन ने कैसे सबको अपने चंगुल में फँसा लिया है... सर्वत्र पाप की ज्वाला जल रही है... चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई है... कैसे बस हाय-हाय कर रहे हैं? इसे देखिए-

दारिद-दसानन दवाई दुनी दीन बंधु।
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी।

तुलसीदास ने एक ओर तो तत्कालीन परिस्थितियों का विशद निरूपण करके अपना युगद्रष्टा का रूप प्रकट किया है, तो दूसरी ओर, आदर्श सामाजिक-पारिवारिक व्यवस्था भी दी है। तुलसी की काव्य रचना का मूल उद्देश्य लोकमंगल है। लोकमंगल का विधान तभी हो सकता है जब समाज एवं परिवार में नैतिक मूल्यों की स्थापना हो तथा उदात्त जीवन मूल्यों पर सबका ध्यान केन्द्रित हो। तुलसी एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे जो समाज एवं परिवार का आदर्श रूप उपस्थित कर सके। उनकी मान्यता थी कि समाज का कल्याण तभी सम्भव है जब समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी भूमिका का निर्वाह करे। तुलसी की चिन्ताएँ देखिए-

सोचिअ विप्र जो वेद विहीना।
तजि निज धरमु विषय लय लीला॥
सोचिअ वयसु कृपन धनबानू।
जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥

अथवा-

सोचिअ गृही जो मोहबस,
करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत,
विगत विवेक विराग॥

तुलसी ने रामकथा के विभिन्न पात्रों को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। राम आदर्श पुत्र हैं जो पितुराज्ञा पालन हेतु राज्याभिषेक त्याग कर वन गमन हेतु शीघ्र प्रस्तुत हो जाते हैं। देखिए कैकेई के प्रति राम का कथन-

सुनु जननी सोइ सुन बड़भागी।
जो पितु मातु वचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

सीता पातिव्रत (पतिव्रता का धर्म) धर्म का आदर्श प्रस्तुत करती हुई पति की सहभागिनी बनना चाहती है, राजप्रासाद का ऐश्वर्य उनके लिए पीड़ित करनेवाला है-

भोग रोग सम भूषन मारु।
जम जातना सरिस संसारु॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं।
मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

आदर्श भ्राता के रूप में भ्रातृ-स्नेह की जीवन प्रतिमा भरत जी हैं। माता कैकेयी द्वारा किए गए षड्यन्त्र का बोध होने पर उनका रोष देखिए-

जब तैं कुमति कुमत जिय ठयऊ।
खण्ड-खण्ड होइ हृदय न गयऊ॥
वर माँगत मन भइ नहिं पीरा।
गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥

तभी तो अयोध्या के समस्त पुरवासी

भरत के प्रेम की सराहना करते नहीं अघाते और उन्हें श्रीराम के प्रेम की जीवित-जाग्रत प्रतिमूर्ति बनाते हैं-

भरतहिं कहहिं सराहि सराहि।
राम प्रेम मूरति तनु आही।।
तात भरत अस काहे न कहहू।
प्रान समान राम प्रिय अहहू।।

राम और भरत का स्नेह पारिवारिक सम्बन्धों के आदर्श का मधुर रूप है। तभी तो राम भरत के प्रति अपना अटूट विश्वास प्रकट करते हुए लक्ष्मण को आश्वस्त करते हैं-

भरतहि होइ न राजमदु
विधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी सींकरनि
छीर-सिन्धु विनसाइ।।

राम एक आदर्श मित्र की भूमिका का निर्वाह करते हुए सुग्रीव की विपत्ति-कथा का बोध होने पर बालि को मारने की प्रतिज्ञा करते हुए मित्र के कर्तव्य का बोध कराते हैं-

जे न मित्र दुःख होंहि दुखारी।
तिन्हहिं विलोकत पातक भारी।।
निज दुःख गिरि सम रज करि जाना।
मित्रक दुख रज मेरु समाना।।

राम एक आदर्श राजा भी हैं। तुलसी ने आदर्श राजा की तुलना मुख से की है-

मुखिया मुख जो चाहिए
खान-पान कौं एक।
पालइ पोसइ सकल अंग
तुलसी सहित विवेक।।

तुलसी ने उत्तरकाण्ड में रामराज्य की परिकल्पना करते हुए आदर्श शासन-व्यवस्था का प्रारूप भी प्रस्तुत किया। आदर्श समाज कैसा होना चाहिए तथा राजा और प्रजा के क्या कर्तव्य होते हैं, इसकी रूपरेखा देखिए-

सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।

तुलसी ने श्रीरामचरितमानस को मानव-व्यवहार का दर्पण बनाया है। तुलसी दास नीति विशारद महापुरुष हैं। एक स्थल पर सचिव, वैद्य और गुरु के अकर्तव्य से उत्पन्न दुष्परिणाम के आधार पर उन्होंने परोक्ष रूप से उनकी आदर्श भूमिका कैसी होनी चाहिए, इसे प्रकट किया है-

सचिव वैद गुरु तीनि जो
प्रिय बोलहिं भय आस।
राज, धर्म, तन तीनि कर
होइ बेगही नास।।
स्वार्थ पर दृष्टि रखने वाले

वर्तमान भारतीय समाज के लिए तुलसी द्वारा वर्णित आदर्श सम्बन्ध आश्चर्यजनक भले ही हों, वे समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को प्रभावित अवश्य करते हैं। हनुमान् सेवक धर्म का आदर्श रूप प्रस्तुत करते हैं, वे निष्काम भाव से अपने स्वामी की आज्ञा पालन को तत्पर रहते हैं। इसी प्रकार सीता के रूप में आदर्श पत्नी, भरत के रूप में आदर्श भाई, लक्ष्मण के रूप में आदर्श अनुज, दशरथ के रूप में आदर्श पिता, अयोध्या के पुरवासियों के रूप में आदर्श प्रजा की जो परिकल्पना तुलसी ने प्रस्तुत की वह लोकमंगलकारी है और उन्हें 'लोकनायक' सिद्ध करती है; उन्हें युगद्रष्टा ही नहीं युगस्रष्टा भी प्रमाणित करती है।

अध्यापक, हिन्दी विभाग
जवाहर नवोदय विद्यालय, कोलेवीरा,
सिमडेगा, झारखण्ड

❑

लोकदेवता महात्मा गणिनाथ एवं योगेश्वर गोविन्दजी

श्री गोपाल भारतीय

इतिहास गवाह है कि समाज के प्रत्येक वर्ग में अतीत से लेकर वर्तमान तक ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने अपनी वीरता. साधना, करुणा आदि के द्वारा मानवता की सेवा की है। परोपकार को ही अपने जीवन का लक्ष्य माननेवाले ये महात्मा कालक्रम से देवता के रूप में स्थापित हो चुके हैं। इन लोकदेवताओं की पूजा आज भी असीम श्रद्धा और विश्वास के साथ की जाती है। इनकी गाथाएँ लोकगीतों में रची–बसीं हैं, जो हमारी लोक–संस्कृति की अनमोल थाती हैं। गाँवों में पीपल, बरगद, पाकड़ आदि वृक्षोंके नीचे मिट्टी से बने चबूतरे पर पूजित लोकदेवताओं– सलहेस, दीना–भद्री, साहेब खबास, शशिया, गौरैया आदि के बीच महात्मा गणिनाथ भी सम्मिलित हैं। इनका आख्यान यहाँ श्री गोपाल भारती की लेखनी से प्रस्तुत है।

– सं.

महात्मा गणिनाथ एवं उनके सुयोग्य पुत्र योगेश्वर बाना गोविन्दजी ऐसे महामानव थे जो अपनी तपस्या, साधना तथा अध्यवसाय के फलस्वरूप अलौकिक शक्तियों तथा अनुपम सिद्धियों के स्वामी बन गये। वे अपनी उदारता और ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की

भावना का परिचय देकर धराधाम पर विचरण करते हुए लोक कल्याण करते रहे। इस प्रकार वे जन–आस्था और जन–श्रद्धा का केन्द्र बनकर लोकनायक कहलाये तथा इन्हीं विभूतियों के चलते कालान्तर में सर्वपूज्य बनकर लोकदेवता के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

अपने गुण–कर्म–स्वभाव तथा भेष के कारण महात्मा गणिनाथ को भगवान् शिव का तथा श्री गोविन्द को योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार माना जाता है। इनके जन्म, चमत्कार तथा लीला–सन्दोह की बहुत–सी कथाएँ किंवदन्तियों, जनश्रुतियों और लोकगीतों पर आधारित हैं, जिनका सम्यक् अध्ययन–मनन करने पर तथ्य सामने आते हैं। श्री गणिनाथ के पूर्वज पलवैयावासी नहीं थे। अतः उनका जन्म कहाँ हुआ, कौन उनके माता–पिता थे; इस सम्बन्ध में कहीं भी सर्वमान्य प्रमाण नहीं मिलते हैं। धर्मपुर राज्य पलवैया के सन्त श्री गणिनाथ–सम्प्रदाय के नहीं थे, वे दक्षिण भारत के योगेश्वर गोरखनाथ पन्थावलम्बी योगी गहिनीनाथ नहीं हो सकते; दोनों के काल अलग–अलग हैं।

बाबा गणिनाथ कब थे, इसकी जानकारी के लिए हमें पलवैया का इतिहास जानना होगा। पलवैया पाल-काल से जुड़ा हुआ है। **हाजीपुर से महनार की ओर गंगातट पर 'पलवैया' नामक स्थान था, जो अब गंगा नदी के कटाव के कारण धारा में समा गया है। अब पलवैया के नाम पर हसनपुर गुर्दा नामक स्थान जो गंगा किनारे है, हर वर्ष कृष्ण जन्माष्टमी के बाद शनिवार को मेला लगता है, तथा बाबा गणिनाथ की जयन्ती मनाई जाती है।** कटाव के पहले पलवैया की खुदाई करने पर यहाँ बौद्धकालीन मूर्तियाँ काले पत्थर की नन्दिनी, अष्टधातु की मूर्तियाँ, अष्टफलक काले पत्थर के बड़े टुकड़े, संगमरमर पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े, यत्र-तत्र पड़े मिले। पाली भाषा में लिखी कुछ स्तुतियाँ, पीतल तथा अन्य धातु की मूर्तियाँ आदि भी मिलीं। इस क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों में पलवैया राज की चर्चा आती है। इतिहासकारों का मत है कि हर्षवर्धन के बाद गोपाल ने 750 ई. से 770 ई. तक राज्य किया, जिसने पालवंश की नींव डाली।

प्रसंगवश उसी काल की एक कथा आती है कि मानशाह नामक एक सद्गृहस्थ था। वह बहुत गरीब था तथा अपना गुजर जंगल से लकड़ियाँ काटकर और बेचकर किया करता था। उसकी पत्नी का नाम पुनमतिया था। वह बहुत धार्मिक विचारों वाली महिला थी। इस प्रकार अभाव में रहकर भी उनका जीवन समाज सेवा एवं परोपकार में बीतता था। इससे समाज में उनकी प्रतिष्ठा भी थी।

एकबार जंगल में लकड़ियाँ काटते हुए मानशाह को देर हो गई। सन्ध्या ढलने लगी थी। वह लकड़ियों के गठ्ठर बाँधने और रात्रि आने के पहले उन्हें ढो ले जाने के लिए चिन्तित हो उठा। उसी समय उसने अलौकिक तेज से सम्पन्न एक युवा योगी को अपनी ओर आते हुए देखा जो गंगास्नान कर आ रहे थे। गौर वर्ण, मलयगिरि चन्दन से चर्चित उन्नत ललाट, रुद्राक्षमाला, यज्ञोपवीत, व्याघ्रचर्म धारण किये वे योगी कन्धे से एक झोली लटकाये थे।

मानशाह सीधा-सादा और साफ दिल इन्सान था। छल-कपट तो उसने जाना ही नहीं था। साफ दिल इन्सान को भगवान् की लीलाएँ साफ-साफ नजर आती हैं। वह भगवान् की आवाज को आसानी से सुन पाता है। वह मानशाह अपने आप को भूल गया और तपस्या से दीप्त मुखमण्डल और दिव्य योगी भेष से प्रभावित होकर नतमस्तक हो अभिवादन कर बैठा। दण्डवत् प्रणाम के पश्चात् मानशाह ने उनका परिचय पूछा। उनमें प्रेम और भक्ति का आदान-प्रदान होने लगा। मानशाह ने योगी में सागर-सी गम्भीरता, आकाश-सी उदारता और अपार शान्ति के दर्शन किये। उनकी वाणी चन्द्र-किरण-सी उर को शीतल कर देनेवाली थी। उस योगी में अद्भुत ईश्वरीय तेज और अलौकिक प्रतिभा का अपूर्व आभास पाकर मानशाह पुलकित हो गया।

बाद में योगी ने ही रात्रि के अँधेरे घिरने की सम्भावना से मानशाह को आगाह किया। तत्क्षण सारी की सारी लकड़ियाँ स्वतः इकट्ठी हो गयीं। योगी ने लकड़ियों को एक छोटी-सी डोरी से ही बाँधकर एक गठ्ठर बना दिया। योगी का स्पर्श पाते ही लकड़ियों का भारीपन जाता रहा। बोझ बड़ी, किन्तु रुई-सी हल्की। ग्रामीणों ने लकड़ी के इस विशाल गठ्ठर को सर पर उठाये मानशाह के साथ एक दिव्य योगी को आते हुए देखा। आश्चर्यचकित ग्रामीणों की भीड़ इकठ्ठी हो गई। यह चर्चा घर-घर में

फैल गयी। भक्तों का जुटाव होने लगा। नर-नारियों की मनोकामना योगी पूरी करने लगे। अब गणिनाथ गाँव के केन्द्र-बिन्दु बन गये।

अन्ततोगत्वा योगी ने मानशाह को अपना धर्मपिता तथा उसकी पत्नी पुनमतिया को धर्ममाता मान लिया। एक क्षमा या खेमा नाम की अनाथ बालिका शिशुरूप में मानशाह को लकड़ियाँ काटते समय जंगल में पत्ते पर सोयी-पड़ी मिली। मानशाह ने ईश्वरीय लीलावश उसे पाल-पोसकर बड़ा कर दिया था; अब वह शादी के लायक हो गई थी। वह बालिका बड़ी सुलक्षणा थी तथा सदा पूजा-पाठ में लगी रहती थी। योगी गणिनाथ का विवाह उस बालिका से हुआ जो बाद खेमासती कहलायी।

विवाह के बाद भी महात्मा गणिनाथ भोग में नहीं, योग में ही तल्लीन रहे। खेमासती उनकी अनुगामिनी बनी। बाबा गणिनाथ सूर्योपासक थे। गायत्री मन्त्र जप तथा सन्ध्या उनकी दिनचर्या में शामिल थी। सूर्योपासना के लिए वैदिक काल से ऋषियों ने गायत्री-साधना का मार्ग प्रशस्त किया है। योगी गणिनाथ ने गायत्री साधना कर अपने शरीरस्थ षट्चक्रों का भेदन कर कुण्डलिनी जागरण कर सिद्धि पायी थी। कुण्डलिनी-सिद्ध योगी तो ईश्वर-तुल्य हो जाता है। माता खेमासती पतिपरायणा थी; वह भी इसी पथ पर चल पड़ी।

वे दोनों बारह वर्षों तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर वैदिक विधानपूर्वक गायत्री साधना करते रहे। महात्मा गणिनाथ-खेमासती ने विवाह के बारह वर्ष के उपरान्त श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी की रात्रि में एक बालक को जन्म दिया, जिसे भगवान् का अवतार कहकर महात्मा गणिनाथ ने गोविन्द नाम रखा। लोकगीतों में डगरिन कहती है- ''**बारह बरिस जे ई नगरी में बसली, कबहूँ न गणिनाथ बोलैलन हो।**'' इससे सिद्ध होता है कि डगरिन विगत 12 वर्षों से उस नगर में रह रही थी। यह शोध का विषय है कि बाबा गणिनाथजी के विवाह के कितने वर्षों के बाद माता खेमासती को प्रथम प्रसव वेदना हुई, जिससे नैष्ठिक ब्रह्मचारी गोविन्दजी महाराज का जन्म हुआ। बताते हैं कि वे 12 वर्षों तक साधना, तपस्या तथा लोक सेवा में लगे रहे। महात्मा गणिनाथ अत्रि, अगस्त्य आदि सद्गृहस्थ ऋषियों के पथ पर चलते रहे।

महात्मा गणिनाथ ने पुत्र-प्राप्ति के लिए असाधारण वेद-मार्ग को अपनाया। अपने लक्ष्य के अनुरूप व्रत, कर्म और पुरुषार्थ करके उनदोनों ने अपने समानधर्मा पुत्र प्राप्त किये। इस प्रसंग का उल्लेख करने का उद्देश्य यह है कि भक्तजन बाबा गणिनाथ को साधारण मानव न जानकर एक महान् उद्देश्य के लिए अवतरित महामानव जानें। जो एक महान् साधक, योगी एवं सिद्ध के रूप में मध्यदेशीय वैश्य-परिवार की दिव्य शक्ति हैं; जिन्होंने अपने कार्य-कलाप द्वारा हमें सन्मार्ग पर अग्रसर एवं सुसंगठित कर प्रतिष्ठा दिलायी। वे हमारी प्रेरणा के दिव्य स्रोत हैं। उन्होंने हमें सत्य, न्याय, प्रेम और सेवा की ओर उन्मुख किया तथा कर्मयोग की दीक्षा दी। वह भगवान् परशुराम की परम्परा में आते हैं। उसी परम्परा में महर्षि विश्वामित्र, गुरु गोविन्द सिंह तथा समर्थ गुरु रामदासजी भी आते हैं, जिनका सिद्धान्त था-

अग्रतः चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरो धनुः।
इदं शास्त्रमिदं शस्त्रं शास्त्रादपि शरादपि॥

अर्थात् आगे मुखाग्र चारों वेद और पीठ पर तरकश सहित प्रचण्ड धनुष-बाण। ये महापुरुष लोकमर्यादा को कायम करने के लिए शास्त्रोपदेश के साथ ही शास्त्रों के प्रयोग भी आवश्यकतानुसार

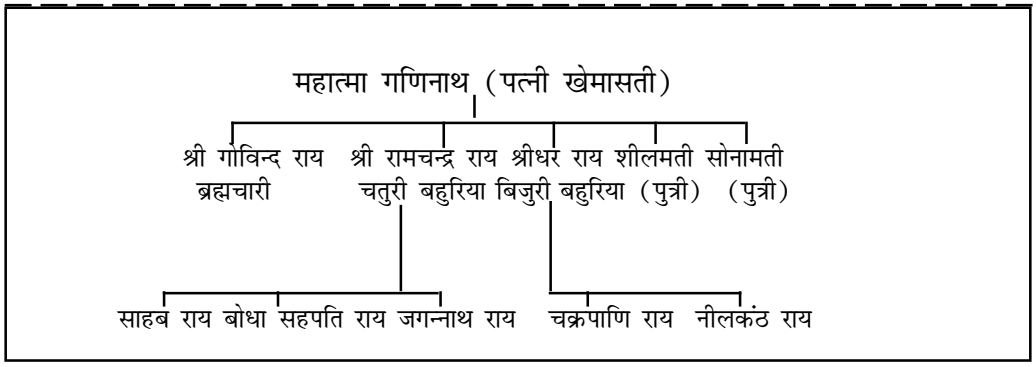

करते थे।

ऐसे महात्मा गणिनाथ का पूरा परिवार ही देव-परिवार में परिणत हो गया। सपत्नी महात्मा गणिनाथ, तीन पुत्र, दो पुत्रियाँ दो बहुएँ और पाँच पौत्र ये तीन पीढ़ियों तक अपनी-अपनी साधना, स्वाध्याय, तप तथा तितिक्षापूर्ण आचरण से देवोपम जीवन प्राप्त कर पाये। ये ही चौदह देव हैं।

महात्मा गणिनाथ दीर्घायु थे। ये चारों वर्णों के लोगों के आराध्य देव हैं लेकिन प्रधानत: मध्यदेशीय वैश्य-समुदाय के नर-नारियों की विशेष श्रद्धा उन्हें प्राप्त है। कहा जाता है कि पालवंशीय राजा गोपाल के पुत्र धर्मपाल (धर्मशाह भी उल्लेख मिलता है) को एक विषैले सर्प ने काट लिया। मरणासन्त अवस्था में मन्त्रियों की सलाह पर धर्मपाल को बाबा गणिनाथ के पास लाया गया। बाबा के स्पर्श मात्र से धर्मपाल जीवित हो उठा। प्रसन्न होकर राजा गोपाल ने आश्रम के आस-पास की 1250 बीघे जमीन बाबा को दान कर दी। यह क्षेत्र धर्मपुर पलवैया कहा जाने लगा। इस प्रकार पूरे पलवैया का क्षेत्रफल 3500 बीघे में फैला है।

पूर्व-मध्यकाल से पूर्व ही सामाजिक संकीर्णता के साथ-साथ धार्मिक संकीर्णता का समावेश भारतीय समाज में हो गया था। बौद्ध और जैनमत का पराभव आरम्भ हो चुका था। हिन्दू-धर्म में भी सम्प्रदायों की बाढ़ सी आ गयी थी। जिमसें वैष्णव एवं शैव-सम्प्रदाय की प्रधानता थी। तुर्को के आगमन के बाद जाति-प्रथा में कट्टरता आ गयी। बाबा गणिनाथ समन्वयवादी सन्त थे, उन्होंने वैष्णवों एवं शैवों को मिलाने का प्रयास किया। यह भी एक कारण हो सकता है जिससे उनको शिव तथा उनके पुत्र योगेश्वर गोविन्द जी को भगवान श्रीकृष्णा (विष्णु) का अवतार मान लिया गया। वही ''धर्मपुर राज पलवैया के महान् सन्त श्री गणिनाथ-गोविन्दजी'' नामक पुस्तक में लेखक श्री कामेश्वर प्रसाद गुप्त से. नि. शिक्षक जो दिवकुल सभा, प्राचीन धाम, पलवैया के कर्मठ सदस्य हैं, इन्होंने 'द्वितीय गोविंदजी' की कथा लिखी है जो महात्मा गणिनाथ के वंश में ही पाँच पीढ़ियों के बाद 14वीं शताब्दी में उत्पन्न हुए। आज भी अपने कुछ लोगों के द्वारा 'पंचपीढ़िया' के नाम से भी जाने जाते हैं। लेखक ने आगे लिखा है कि 1938 ई. के आस-पास क्षेत्रीय जागीरदार लाख खाँ, किस्ती खाँ, बनक्कर खाँ और सुलतान खाँ ने संयुक्त रूप से पलवैया राज्य को हड़पने की नीयत से धावा बोल दिया। उन आक्रमणकारियों को शेरशाह बादशाह का सिपहसालार भी माना जाता है।

उस समय पलवैया राज्य के राजा द्वितीय गोविंदजी महाराज तत्कालीन गद्दीनशीन थे और पलवैया धाम मन्दिर के प्रधान पुजारी बाबा शिवचरण राय थे। बाबा द्वितीय गोविंदजी एक महान् योद्धा थे। उनके पास काफी तादाद में सैनिक थे। सरदारों ने मुठभेड़ की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलते ही सबने बाबा गणिनाथजी, बाबा गोविन्दजी, और माँ खेमासती का नाम लेकर जय-जयकार किया। तत्क्षण पलवैया के सैनिकों में अपार जोश और शक्ति का संचार हो गया। लड़ाई के बाजे-गाजे बजने लगे। बाबा द्वितीय गोविन्दजी महाराज ने किले का फाटक खुलवाया और सभी दुश्मन पर टूट पड़े। तीर-तलवार, भाले, बर्छी, की मार से दुश्मन की फौज कट-कट कर गिरने लगी। रणभूमि में रक्त की धार बह चली। लगातार छः घंटे की घमासान लड़ाई के बाद दुश्मन के पाँव उखड़ गये। पलवैया राजा के वीर-बाँकुरों ने उन्हें मार-काट कर खदेड़ दिया। वे घायल अवस्था में भाग खड़े हुए। बाबा द्वितीय गोविन्द जो विजयी हुए जिनकी गाथा लोकगीतों में वर्णित है।

आज भी सुलतान खाँ की जहाँ मृत्यु हुई, सुलतानपुर गाँव बसा है। वहाँ उसकी कब्र थी, जो अब नष्ट हो चुकी है। किस्ती खाँ और बक्कर खाँ मर गये। घायल अवस्था में लाल खाँ सैनिकों द्वारा बन्दी बना लिया गया और बाबा के सामने पेश किया गया। बाबा द्वितीय गोविन्दजी ने शरणागत जानकर उसे क्षमा कर दिया जिससे प्रभावित होकर वह बाबा का शिष्य बन गया। वह भी पलवैया में रहकर सैनिकों में शामिल हो गया। मरने पर उसकी कब्र भी वहीं बनवा दी गयी जहाँ सपरिवार बाबा गणिनाथजी की समाधियाँ तथा प्राचीन मन्दिर अवस्थित थे। पुनः वहाँ विशाल मन्दिर का निर्माण 14 वीं से 15 सदी में बाबा द्वितीय गोविंदजी ने किया जो गंगा के कटाव के कारण प्रवाह में बहकर विलीन हो गया।

बाबा द्वितीय गोविन्द के आदर्श, कुल पुरुष बाबा गणिनाथ एवं कुलदेव बाबा प्रथम गोविन्द जी थे। पलवैया राज्य के गद्दीनशीन सन्तों को भी ब्रह्मचारी, योद्धा एवं राजनीति कुशल होना अनिवार्य था। अतः द्वितीय गोविंदजी भी बाल-ब्रह्मचारी थे। वे कर्मयोगी तथा समाज पथ-प्रदर्शक थे। उन्होंने बिखरे हुए हिन्दुओं को एकत्र कर संगठन का मन्त्र दिया। समय पड़ने पर वे योद्धा के समान अपने सैनिकों के साथ युद्ध के मैदान में उतरे और विजयी हुए।

सच ही कहा है- ''यतो धर्मस्ततो जयः'' अर्थात् जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। वे 14वीं सदी के महान् सद्गुरु थे। उन्होंने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि गणिनाथजी को माननेवाले सभी एक साथ भोजन करें। सैनिकों को युद्ध का प्रशिक्षण दिया जाता था तथा वे दूध, मिट्ठा एवं तुलसीदल की छोंकी देकर दीक्षित किया करते थे। सैनिकों में सभी वर्ण के योद्धा थे। प्रत्येक हिन्दू को धर्म-दीक्षा हेतु जनेऊ, तलवार और केश रखने का आदेश दिया। उन्होंने आततायी और आक्रामक लाल खाँ को क्षमादान देकर जहाँ अपने सन्तत्व को गरिमा प्रदान की; वहीं अपनी राजनीतिक कुशलता का लोहा मनवाकर शत्रु को भी दीक्षित कर, शिष्य बनाकर अपना हितैषी बनाया। इससे उनका पलवैया राज्य निष्कण्टक हो गया।

❖

राक्षस का वध करते हुए श्रीहनुमान्

चार्ल्स कोलमेन द्वारा लिखित पुस्तक **'दि माइथोलोजी ऑफ दि हिन्दूज'** का प्रकाशन 1832 ई. में लन्दन से हुआ था। इसमें हिन्दू-देवी-देवताओं के अनेक चित्र संकलित किये गये हैं। प्रत्येक चित्र के नीचे के विवरण के अनुसार भारत में देखीं गयी विभिन्न मूर्तियों तथा पेंटिंग के आधार पर ये पेंसिल-रेखाचित्र बनाये गये हैं, जिन्हें जे. निथसेज लिथोग नामक कलाकार ने बनाया तथा पार्वरी एलेन्स एण्ड कम्पनी ने लन्दन से 1832 में प्रकाशित किया। - इसी पुस्तक से साभार

कौटिल्य की दृष्टि में नारी की गरिमा

अर्थशास्त्र के महान् प्रणेता कौटिल्य ने कहा है कि न्यायालय में जहाँ गुप्तकार्यवाही हो रही हो, वहाँ भी एक पुरुष और स्त्री की उपस्थिति गवाही के लिए अनिवार्य है:-''**रहस्यव्यवहारेषु एका स्त्री पुरुष उपश्रोता उपद्रष्टा वा साक्षी स्यात्।**'' इतना अधिकार नारी को दिया गया है!

आज गुप्तचर के कार्य के लिए नारी को भी लगाया जाता है। इसकी परिकल्पना 2500 वर्ष पहले कौटिल्य ने की थी-**साध्वी व्यञ्जनाभि: स्त्रीभिर्दूष्यानुन्मादयित्वा तासामेव वेश्मस्वभिगृह्य सर्वस्वान्या हरेयु:।**'' (अर्थशास्त्र 5:2)

कौटिल्य ने राजकीय कार्य करते हुए कर्मचारी की मृत्यु होने पर उनकी पत्नी और पुत्र को वेतन का आधा देने का विधान किया है:-

कर्मसु मृतानां पुत्रदारा भक्तवेतनं लभेरन्। (अर्थशास्त्र : 5:4)

स्त्रीधन के सम्बन्ध में कौटिल्य ने लिखा है:-

जीवति भर्तरि मृताया: पुत्रा: दुहितरश्च स्त्रीधनं विभजेत्।

अपुत्राया: दुहितर:। तदभावे भर्ता। (अर्थशास्त्र: धर्मस्थीय: अध्याय-2)

स्त्री को कौटिल्य ने अधिकार दिया है कि 12 वर्षों तक पति यदि बाहर रहे तो वह देवर के साथ विवाह कर सकती है:-

दीर्घ प्रवासिन: प्रव्रजितस्य प्रेतस्य वा भार्या सप्ततीर्थान्याकांक्षेत, संवत्सरं प्रजाता। तत: पतिसोदर्यं गच्छेत्।

यदि अपना देवर न रहे तो अपने दायाद के किसी भी देवर से विवाह कर सकती है। पति के अतिरिक्त दूसरे के वीर्य से सन्तान की उत्पत्ति होने पर जहाँ दूसरे आचार्य ने पुरुष को ही सन्तान पर अधिकार दिया है वहाँ कौटिल्य ने स्पष्ट लिखा है कि इस सन्तान पर स्त्री का भी अधिकार है:-

परिग्रहे बीजमुत्सृष्टं क्षेत्रिण इत्याचार्या: माता भस्त्रा

यस्य रेतस्तस्यापरम् इत्यपरे विद्यमानमुभयम् इति कौटिल्य:। (अधिकरण 3: अध्याय 7)

मूर्ख के लक्षण

प्रो. रामविलास चौधरी

ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में धारा नगरी में एक प्रसिद्ध राजा हुए जिनका नाम भोज था। भोजराज के नाम से उनकी ख्याति थी। संस्कृत के महान् विद्वान् के साथ वे पण्डितों को पर्याप्त सम्मान देते थे। कविगण काव्य रचना के द्वारा उनसे अधिक आदर और विपुल धन प्राप्त करते थे। उनकी राजसभा में बहुसंख्य कवि आश्रय पाते थे। राजा भोज ने स्वयं कई दर्जन पुस्तकों का प्रणयन किया था अलंकारशास्त्र से सम्बद्ध दो प्रसिद्ध ग्रन्थ आज भी इस क्षेत्र में उनकी कीर्ति के स्तम्भ माने जाते हैं। वे ग्रन्थ हैं- सरस्वती-कण्ठाभरण और शृंगारप्रकाश, उन्होंने सभी रसों में शृंगार को प्रधान रस प्रतिपादित किया है।

संस्कृत गद्य साहित्य में 'भोजप्रबन्ध' नामक कथासंग्रह अति प्रसिद्ध है। बंगाल के राजा बल्लालसेन (११६०-११७९ ई.) इसके लेखक हैं। इन्होंने धारा नगरी के राजा भोज की दानशीलता, विद्या-विलास एवं नैतिकता से सम्बन्धित अनेक कथाओं का संकलन इस कथा-ग्रन्थ में किया है। इन कथाओं के अतिरिक्त अनेक अन्य कहानियाँ भी परम्परा में प्रचलित हैं, जिनके केन्द्र में राजा भोज हैं। इनके माध्यम से अन्ततः नैतिक मूल्यों की महत्ता बतलायी है। इन कथाओं में संस्कृत साहित्य के अनेक कविगणों की कथा है, जहाँ वे अपनी कृतियों के साथ सांकेतिक रूप में उपस्थित होते हैं। फलतः विभिन्न काल के कवियों को एकत्र वर्णित किया गया है। इन्हीं कथाओं में से एक कथा में मूर्ख का लक्षण बहुत मार्मिक ढंग से समझाया गया है, जो संस्कृत साहित्य के अधीती विद्वान् प्रो. (डा.) रामविलास चौधरी के शब्दों में यहाँ प्रस्तुत है।

एक बार की घटना है कि सिंहासन से उठने के बाद भोजराज अपनी विदुषी सहधर्मिणी से मिलने उसके कक्ष में एकाएक पहुँच गए। उस समय वह अपनी एक आत्मीय सहेली से कुछ गम्भीर चर्चा कर रही थी। अचानक अपने कक्ष में प्रविष्ट हुए राजा को देखकर पत्नी ने 'पधारिये मूर्खराज' कहकर उनका स्वागत किया। उसके इस 'मूर्खराज' सम्बोधन को सुनकर राजा आश्चर्यचकित हो गये क्योंकि अन्य दिनों वह 'भोजराज' कहा करती थी। इसके पहले कभी उसने ऐसा सम्बोधन नहीं किया था। वे बड़े संशय में पड़ गये। वह पाणिगृहीती धीमती थी। अतः अकारण ऐसी अपमानजनक वाणी बोलने की उससे उम्मीद नहीं की जा सकती

थी। किन्तु इस प्रकार के अनुचित वचन कहने का कारण पूछने का साहस भी राजा नहीं कर सके। कुछ इधर-उधर की बातें करने के बाद वे अपने कक्ष में चले गए। फिर भी उनका मन अशान्त था। विदुषी रानी के वैसे सम्बोधन के प्रति उनकी जिज्ञासा उत्कट होती गई। किसी दूसरे व्यक्ति से अपने मन की बात कहने या पूछने से जग-हँसाई ही होती है। इस सोच-विचार के क्रम में राजा को एक उपाय सूझा। अब उन्हें तसल्ली हो गयी।

दूसरे दिन राजा सिंहासन पर विराजमान हुए तो पण्डितजन वहाँ आने लगे। जो पण्डित आते, राजा उनसे कहते- 'आइये मूर्खराज!' पण्डितों को आश्चर्य होता कि अन्यदिन राजा उन्हें 'पण्डितराज' कहकर स्वागत करते थे। आज वे 'मूर्खराज' क्यों कह रहे हैं। वे लजाकर अपने आसन पर विराजमान हो जाते थे और सिर झुका लेते थे, किन्तु वैसे सम्बोधन का कारण पूछने का साहस किसी सभापण्डित में नहीं होता था।

उस क्रम में महाकवि कालिदास कुछ विलम्ब से वहाँ पहुँचे। राजा भोज ने उन्हें भी 'मूर्खराज' कहकर स्वागत किया। राजा के मुख से ऐसी अवमाननापूर्ण वाणी सुनते ही महाकवि उबल पड़े और निर्भीकता से अपने आश्रयदाता से कहा-

गतं न शोचामि कृतं न मन्ये
द्वयोस्तृतीयो न भवामि राजन्।
पृष्टस्य वच्मि च पुनर्न वच्मि
किं कारणं भोज! भवामि मूर्खः॥

अर्थात् मैं बीती हुई बातों या घटनाओं पर शोक नहीं करता हूँ। दूसरी बात कि कुछ अच्छे काम किये अथवा किसी का उपकार किया तो उसपर अभिमान नहीं करता हूँ कि मैंने ऐसा सत्कर्म किया है। उसे लेकर अपनी प्रशंसा का ढोल नहीं पीटता हूँ। तीसरी बात कि दो व्यक्ति जहाँ वार्त्ता कर रहे हों वहाँ मैं एकाएक नहीं टपक पड़ता हूँ। चौथी बात कि जब मुझे किसी विषय में पूछा जाता है तभी अपनी राय देता हूँ। यों ही अनर्गल प्रलाप नहीं करता हूँ और पाँचवीं तथा अन्तिम बात कि जिस विषय में अपना मन्तव्य दे देता हूँ उसी को बार-बार नहीं कहते रहता हूँ। जब इन पाँच कामों को मैं नहीं करता हूँ तब हे भोज! मैं मूर्ख किस कारण से हूँ। राजा को अपनी जिज्ञासा का उत्तर मिल गया।

तात्पर्य यह है कि महाकवि कालिदास के विचार में जो व्यक्ति बीती हुई घटना या दुर्घटना पर रोता है, विलखता है, सिर धुनता है, अपने भाग्य को या ईश्वर को कोसता है वह मूर्ख है। विपत्ति के समय धैर्य रखना चाहिये। कहा भी है- 'विपदि धैयम्'।

मानस में कहा गया है-

धीरज धर्म मित्र अरु नारी
आपत्काल परखिये चारी।

कालिदास के विचार में मूर्ख का दूसरा लक्षण है, अपने द्वारा किये गए अच्छे कार्यों का अभिमानपूर्वक बखान करना तथा अपनी प्रशंसा आप करते हुए नहीं अघाना। उत्कृष्ट या प्रशंसनीय कार्य को करने वाले व्यक्ति की प्रशंसा तो दूसरे व्यक्ति करते ही हैं, फिर खुद गाल बजाने की जरूरत क्या है? दान देने के बारे में गोपनीय या गुप्तदान को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। कहा गया है कि दाहिने हाथ से दिये गये दान का पता वायें हाथ को भी नहीं होना चाहिए।

तीसरा तथ्य है कि दो व्यक्ति आपस में बातें करते रहते हैं तो उसमें कुछ गोपनीय वार्त्ता भी हो सकती है जिसे अन्य व्यक्ति द्वारा सुन

लिया जाना अभीष्ट नहीं होता है। इससे भेद खुलने की आशंका रहती है जो वांछनीय नहीं होता। वैसे व्यक्ति को हीन दृष्टि से देखा जाता है। अत: दो व्यक्तियों के बीच वार्त्ता के समय अनुमति लेकर हो उनके पास जाना उचित है।

चौथी बात कि पूछने पर ही बोलना समझदार व्यक्ति की लक्षण है। कुछ लोग है जो बिना पूछे ही राजनीति या किसी अन्य विषय पर बोलते रहते हैं, ऐसे व्यक्ति की अनर्गल बातें सुनते-सुनते श्रोता ऊब जाते हैं। कुछ लोग उन्हें चुप रहने की सलाह देते हैं तो दूसरे लोग वहाँ से दूर जाना ही बेहतर मानते हैं। अत: बिना पूछे ही बक-बक करना मूर्ख का लक्षण माना गया है।

एक ही बात को बार-बार बोलना भी मूर्ख का लक्षण कहा गया है। काव्य में इसे पुनरावृत्ति दोष माना गया है। लोक में भी एक ही बात को पुन: सुनना पसन्द नहीं किया जाता है। आम लोग ऐसी स्थिति से बचना ही चाहते हैं।

यहाँ यह उल्लेख कर देना अनपेक्षित नहीं होगा कि ग्यारहवीं शताब्दी में धारा नगरी के राजा भोज की राजसभा में कालिदास की उपस्थिति ऐतिहासिक दृष्टि से किसी रूप में स्वीकार्य नहीं है। न केवल कालिदास बल्कि सातवीं शती के बाणभट्ट, दण्डी, मयूर तथा आठवीं शती के भवभूति- ये सभी एक साथ ग्यारहवीं शती के भोज के समकालीन नहीं हो सकते हैं। हाँ, भोजराज को सभा के कवियों के कालिदास, बाण तथा भवभूति आदि उपमान रहे होंगे जिनका उल्लेख वल्लाल कवि ने अपनी रचना 'भोजप्रबन्ध' में राजा की दानशीलता के वर्णन-प्रसंग में किया है।

अत: उपर्युक्त भोज-कालिदास-संवाद किसी कवि की उद्‌भावना कहा जा सकती है, किन्तु उसकी रोचकता एवं यथार्थता असंदिग्ध है।

❑

धर्म

धर्मो विश्वस्य जगत: प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।
धर्मेण पापमद्नुपति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति।।

सम्पूर्ण विश्व का आधार धर्म ही है। लोग संसार में कल्याण के लिए धार्मिक व्यक्ति के पास जाते हैं। धर्म से पाप का क्षय होता है। धर्म में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। इसलिए धर्म को सबसे बड़ा कहा गया है।

-तैत्तिरीय-आरण्यक (10/63)

न धर्मफलमाप्नोति यो धर्मं दोग्धुमिच्छति।
यश्चैनं शंकते कृत्वा नास्तिक्यात् पापचेतन:।।

जो पापी नास्तिकता से सशंक होकर धर्म करता है, उसे दुहना चाहता है, वह धर्मफल को प्राप्त नहीं कर सकता है।

-महाभारत (वनपर्व 31/6)

रुद्राक्ष के धार्मिक अनुप्रयोग

डा. मगनदेव नारायण सिंह

" रुद्रस्य अक्षिः इव रुद्राक्षः। अक्ष्युपलक्षितम् अश्रु तज्जन्यः वृक्षः रुद्राक्षः।

अर्थात् भगवान् शंकर के आँसुओं से उत्पन्न वृक्ष के फल से प्राप्त बीज को रुद्राक्ष कहते है।

श्रीमद्भागवत में इस सन्दर्भ में एक कथा है -

एकबार आशुतोष भगवान् शंकर ने देवगणों एवं मनुष्यों के कल्याणार्थ त्रिपुरासुर का वध करना चाहा। उन्होंने एक सहस्त्र वर्षों तक तपस्या की और अघोरास्त्र का चिन्तन एवं ध्यान किया। इसी क्रम में भगवान् शंकर की आँखों से अश्रुबिन्दु गिरे जिससे रुद्राक्ष के वृक्ष की उत्पत्ति हुई।

धर्मग्रन्थों के अनुसार रुद्राक्ष की उत्पत्ति सर्वप्रथम गौड़देश में हुई और फिर मथुरा, अयोध्या, श्रीलंका, मलय पर्वत, सह्याद्रि और काशी में भी रुद्राक्ष के वृक्ष उग आये।

विद्वज्जनों के अनुसार आँवले के सदृश रुद्राक्ष को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। बेर के समान को मध्यम, और छोटे आकार के रुद्राक्ष को सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करनेवाला माना जाता है। कीड़े द्वारा खाये गये एवं क्षत-विक्षत रुद्राक्ष उपयोगी नहीं होते हैं।

रुद्राक्ष धारण करने से लाभ

रुद्राक्ष अथवा रुद्राक्षमाला धारण करने से मन की चंचलता दूर रहती है; आत्म.विश्वास एवं आत्म-सम्मान में वृद्धि होती है। रुद्राक्ष में इलेक्ट्रोमैग्नेटिक तरंग होती है जो रक्तचाप (Blood Presure) को नियन्त्रित करती है।

किसी इच्छा की पूर्ति के उद्देश्य से विशेष नियम के तहत धारण करने से इच्छित वस्तु या लक्ष्य की प्राप्ति में मदद मिलती है।

शिव-पुराण एवं देवी-भागवत पुराणों के अनुसार रुद्राक्ष एकमुखी से चौदह मुखी तक प्राप्त होता है।

एकमुखी रुद्राक्ष : इष्टदेव भगवान् शंकर और प्रधान ग्रह सूर्य को प्रसन्न करने हेतु इसे धारण करने की सलाह दी जाती है।

कहते हैं कि यह अपने प्रभाव से रंक को राजा भी बना सकता है।

इसका मूलमन्त्र - **ॐ नमः शिवाय** है और स्तोत्र - **ॐ ह्रीं नमः** है।

दोमुखी रुद्राक्ष : इसके इष्टदेव अर्धनारीश्वर, शिव-पार्वती और प्रधान ग्रह चन्द्रमा है।

यह हर प्रकार के रिश्तों को प्रगाढ़ बनाता है, ध्यान में एकाग्रता लाता है। इसका मूलमन्त्र **ॐ नमः शिवाय** है। इसे धारण करने वालों को चन्द्र-स्तोत्र का पाठ करने की सलाह दी जाती है।

द्विमुख रुद्राक्ष

तीनमुखी रुद्राक्ष : इसके इष्टदेव, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अग्नि और ग्रह मंगल है। इसके धारण करने से ज्वर, हड्डी का टूटना, इलेक्ट्रिक शॉक, बवासीर आदि रोगों में लाभ होता है। इसके लिये मंगल स्त्रोत, नवग्रह स्त्रोत और कवच के पाठ करने की सलाह दी जाती है।

त्रिमुख रुद्राक्ष

चारमुखी रुद्राक्ष : भगवान् ब्रह्मा और बुध ग्रह को प्रसन्न करने के लिये इसे धारण करने की सलाह दी जाती है।

लेखक, कलाकार और कवियों को लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होता है एवं मन की चञ्चलता को स्थिर करता है।

इसका मूलमन्त्र है -

ॐ नमः शिवाय

ॐ ह्रीं नमः

चतुर्मुख रुद्राक्ष

पाँचमुखी रुद्राक्ष : यह भगवान् शिव को आनन्दित करता है इसे कालाग्नि के नाम से भी जाना जाता है।

इसको धारण करने से मानसिक शान्ति मिलती है। बुरी आदतों से छुटकारा मिलता है एवं अति कामेच्छा पर काबू पाना आसान हो जाता है।

इसका जपमन्त्र है -

ॐ नमः शिवाय

ॐ ह्रीं नमः

पञ्चमुख रुद्राक्ष

छहमुखी रुद्राक्ष : भगवान् कार्त्तिकेय और शुक्रग्रह की शान्ति के लिये धारण करने की सलाह दी जाती है।

प्रेम, कामसुख, संगीत, कविता, सर्जनात्मक एवं कलात्मक कुशलता, ज्ञान-समझदारी और वाक् चातुर्य में लाभ होता है।

इसका जपमन्त्र है -

ॐ नमः शिवाय

ॐ ह्रीं हुं नमः

षण्मुख रुद्राक्ष

सातमुखी रुद्राक्ष : महालक्ष्मी, कामदेव, अनन्त, सर्पो के राजा और शनिग्रह को प्रसन्न करने के लिये इसे धारण करने की सलाह दी जाती है। तन्दुरुस्ती, सौभाग्य और सम्पत्ति के लिये, रुके हुए कार्य के निष्पादन के लिए, निराशा और हताशा को दूर करने के लिये एवं आत्मविश्वास पैदा करने के लिये इसे आवश्यक माना जाता है।

इसका जपमन्त्र है - **ॐ नमः शिवाय, ॐ हुं नमः**

महालक्ष्म्यष्टक-स्तोत्र, कामदेव गायत्री मन्त्र, शनि स्तोत्र

नवग्रह स्तोत्र या कवच का पाठ अभीष्ट की प्राप्ति में सहायक होते हैं।

सप्तमुख रुद्राक्ष

आठमुखी रुद्राक्ष : दीर्घायु, शत्रु और विपत्तियों पर विजय पाने के लिये, ज्ञान और मन की एकाग्रता तथा ऋद्धि-सिद्धि के लिए इसे धारण करना चाहिए। भगवान् गणेश (अष्ट-विनायक) गंगा एवं राहु-स्तोत्र के पाठ करने की सलाह दी जाती है।

इसका जपमन्त्र है-

ॐ नमः शिवाय,

ॐ हुं नमः

गणपति स्तोत्र, नवग्रह स्तोत्र एवं कवच का पाठ

अष्टमुख रुद्राक्ष

नौमुखी रुद्राक्ष : यह नवदुर्गा, भैरव एवं केतु की शान्ति के लिए है। इससे सफलता, सम्मान, सम्पत्ति, शक्ति, निर्भयता, चतुराई, कार्यनिपुणता एवं सुरक्षा की वृद्धि होती है। साथ ही वास्तुदोषों का निवारण होता है।

इसका जपमन्त्र है -

ॐ नमः शिवाय

ॐ ह्रीं हुं नमः

इसके लिए कुञ्जिका-स्तोत्र, केतु-स्तोत्र, नवग्रह-स्तोत्र एवं कवच के पाठ किये जाते हैं।

नवमुख रुद्राक्ष

दशमुखी रुद्राक्ष : यह भगवान् विष्णु (जनार्दन) को प्रसन्न करने एवं सभी ग्रहों की शान्ति के लिए है।

इसका जपमन्त्र है -

ॐ नमः शिवाय, ॐ ह्रीं नमः

विष्णुसहस्त्रनाम, नारायण-कवच, दशावतार-स्तोत्र

दशमुख रुद्राक्ष

ग्यारहमुखी रुद्राक्ष : यह भगवान् रुद्रदेव, भगवान् महावीर एवं भगवान् इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए धारण किया जाता है।

इसका जपमन्त्र है -

ॐ नमः शिवाय

ॐ ह्रीं हुं नमः एवं हनुमान-चालीसा का पाठ करने से अत्यन्त लाभ मिलता है।

एकादशमुख रुद्राक्ष

बारहमुखी रुद्राक्ष : महाविष्णु एवं भगवान् सूर्य को प्रसन्न करने, नेतृत्व के गुण में श्रीवृद्धि करने, स्वास्थ्य एवं आत्मसम्मान के लिये इसे धारण करने की सलाह दी जाती है।

इसका जपमन्त्र है -

ॐ नमः शिवाय

ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः

विष्णुसहस्त्रनाम तथा नारायण-कवच के पाठ भी अभीष्ट सिद्धि के लिए किये जाते हैं।

द्वादशमुख रुद्राक्ष

तेरहमुखी रुद्राक्ष : भगवान् इन्द्र एवं कामदेव तथा कार्त्तिकेय को प्रसन्न करने के लिये जीवन में सुख-समृद्धि की प्राप्ति, वशीकरण, ऋद्धि-सिद्धि और प्रसिद्धि की प्राप्ति हेतु इसे धारण किया जाता है।

इसका जपमन्त्र है -

ॐ नमः शिवाय

ॐ ह्रीं नमः

इसमें गायत्री-मन्त्र, शनि-स्तोत्र एवं कवच के पाठ अत्यन्त लाभदायी होते हैं।

त्रयोदशमुख रुद्राक्ष

चौदहमुखी रुद्राक्ष : यह भगवान् शिव और हनुमानजी को प्रसन्न करने के लिये, गरीबी की मुक्ति, बुरे तत्त्वों से रक्षा एवं अन्तर्ज्ञान के लिए लाभकारी है।

इसका जपमन्त्र है -**ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः**, शिवमहिम्न-स्तोत्र, हनुमानचालीसा एवं शनि-स्तोत्र का पाठ उपयोगी है।

चतुर्दशमुख रुद्राक्ष

महाकवि विद्यापति कृत **"शैवसर्वस्वसार"** पुस्तक में रुद्राक्ष धारण करने से होनेवाले लाभ का उल्लेख किया गया है। **"शैवसर्वस्वसार"** के अनुसार शरीर के किन-किन अंगों में किस-किस मुख वाले रुद्राक्ष धारण करने से क्या-क्या लाभ होता है उनका संस्कृत श्लोकों के साथ उल्लेख किया गया है।

स्कन्दपुराण के हवाले से ''**शैवसर्वस्वसार**'' में उल्लेख है कि हाथ में, भुजा में, कण्ठ में तथा मस्तक पर रुद्राक्ष धारण करने से मनुष्य सभी प्रकार के भय से मुक्त रहकर पृथ्वी पर विचरण करता है। जिस प्रकार भगवान् शिव समस्त देव और दानव सबके लिये वन्दनीय हैं उसी प्रकार हीन व्यक्ति भी रुद्राक्ष धारण करने से सभी पापों से मुक्त हो उत्कृष्ट गति को प्राप्त करते हैं। श्लोक है –

हस्ते बाहौ तथा कण्ठे मूर्ध्नि रुद्राक्षधारणात्।
अवध्यः सर्वभूतानां रूद्रवद् विचरेद् भुवि।। ८९१।।
सुरासुराणां सर्वेषां वन्दनीयो यथा शिवः।
ध्यानधारणहीनोऽपि रुद्राक्षं धारयेत् तु यः।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सः याति परमां गतिम्।। ८९२।।

रुद्राक्ष धारण करने के फल के बारे में स्कन्दपुराण में उल्लेख है :-

लक्षन्तु जपतः पुण्यं कोटिर्भवति संख्यया।
दशकोटिसमं पुण्यं धारणाल्लभते नरः।। ८९३।।
यावदेतच्छरीरस्थं तावन्मृत्युर्न बाधते।। ८९४।।

अर्थात् जो व्यक्ति रुद्राक्ष धारण करते हैं वे यदि, एक लाख जप करते हैं तो उन्हें एक करोड़ जप करने का फल प्राप्त होता है।

शैवसर्वस्वसार के अनुसार रुद्राक्ष धारण करने के मन्त्र इस प्रकार हैं :-

एकमुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ भृशं नमः।**
दोमुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ ॐ नमः।**
तीनमुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ हूं नमः।**
चारमुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ ह्रीं नमः।**
पाँचमुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ हूँ नमः।**
छःमुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ ह्रूं ह्रूं नमः।**
सातमुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ हं नमः।**
आठमुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ हं नमः।**
नौमुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ यूं नमः।**
१० मुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ श्रीं नमः।**
११ मुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ श्रीं नमः।**
१२ मुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ हां हां नमः।**
१३ मुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ क्षौं क्षौं नमः।**
१४ मुखी रुद्राक्ष	-	**ॐ नमो नमः।**

एक मुख वाला रुद्राक्ष धारण करने वाला व्यक्ति साक्षात् शिव के समान है। द्विमुख रुद्राक्ष धारण करने से गोवध समान पाप से मुक्ति मिलती है। त्रिमुख रुद्राक्ष धारण करनेवाला व्यक्ति कुवेर के समान समझा जाता है। चारमुखी रुद्राक्ष धारण करने से नर हत्या पाप से मुक्ति मिलती है क्योंकि उस व्यक्ति पर ब्रह्मा की असीम कृपा होती है। पंचमुखी रुद्राक्ष धारण करनेवाले कालाग्नि रुद्र के समान होते हैं। छःमुखी रुद्राक्ष धारण से कार्त्तिकेय के समान वह पराक्रमी समझा जाता है। सप्तमुखी रुद्राक्ष व्यक्ति को सौभाग्यशाली एवं ऐश्वर्यवान् बनाता है।

सप्तवक्त्रो महासेन अनन्तो नाम नागराट्।
सुवर्णः सुभगश्चैव दरिद्रोऽपीश्वरो भवेत्।। ९०१।।

अष्टमुखी धारण करनेवाला व्यक्ति सौ वर्ष से अधिक जीवित रहकर मृत्यु के उपरान्त शंकर के समान हो जाते हैं।

नौमुखी रुद्राक्ष धारण करनेवाले के बारे में उल्लेख है कि -

भैरवं नवमं वक्त्रं कपिलं मुक्तिदं स्मृतम्।
धारयेद्वामहस्तेन मम तुल्यबलो भवेत्।। ९०३।।
लक्षकोटिसहस्राणि ब्रह्महत्याः करोति यः।
तत्सर्वं दहते शीघ्रं नववक्त्रस्य धारणात्।। ९०४।।

भगवान शिव कहते हैं कि कपिल और भैरव नामक नवमुखी रुद्राक्ष भक्ति को दर्शाता है। इसे दाहिनी भुजा में धारण करना चाहिये। ऐसा करने वाले भगवान् शंकर के समान बलशाली होते हैं। जो व्यक्ति हजार, लाख और करोड़ ब्रह्महत्या कर बैठते हैं वे भी नौ मुखी रुद्राक्ष धारण कर उस ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाते हैं।

दशमुख रुद्राक्ष :

दशवक्त्रो महासेनः स्वयं देवो जनार्दनः।
ग्रहाश्चैव पिशाचाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः।।
पन्नगाश्च विनश्यन्ति दशवक्त्रस्य धारणात्।।९०५।।

महासेन नामक दशमुख रुद्राक्ष धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् जनार्दन माने जाते हैं। इसे धारण करने से ग्रह, पिशाच, वेताल, ब्रह्म, राक्षस तथा सर्पादि का प्रकोप नष्ट हो जाता है।

शैवसर्वस्वसार में ग्यारहमुखी एवं बारहमुखी रुद्राक्ष धारण करने के फल का उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु, 13 मुखी और 14 मुखी रुद्राक्ष धारण करने के फल का उल्लेख है।

13 मुखी रुद्राक्ष के बारे में उल्लेख है कि -

त्रयोदशमुखण्चैव रुद्राक्षं प्राप्यते यदि।
सर्वान् कामानवाप्नोति सौभाग्यं परमं लभेत्।।९१०।।
कामदेवं हि रुद्राक्षं सदा कण्ठेन धारयेत्।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि भाग्यहीनस्य षण्मुख।।९११।।

अर्थात् 13 मुखी रुद्राक्ष धारण करने वाले की सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। इस कामदेव नामक रुद्राक्ष को कण्ठ में धारण करना चाहिये।

14 मुखी रुद्राक्ष धारण करने के फल के बारे में कहा गया है कि -

चतुर्दशमुखं यत्तु पुण्येन प्राप्यते यदि।
धारयेत् सततं मूर्ध्नि सर्वपापप्रणाशनम्।।९१२।।
पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते पुण्यगोचरैः।।९१३।।

अर्थात् चौदहमुखी रुद्राक्ष को मस्तक पर धारण करना चाहिये। यह सभी पापों को नष्ट करता है। ऐसे व्यक्ति की पूजा सौ देवों द्वारा की जाती है तथा वे पुण्यवान् होते हैं।

महावीर कैंसर संस्थान, फुलवारीशरीफ, पटना

❖

गर्भस्थ परीक्षित पर भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा

❑ डा. जयनन्दन पाण्डेय

" जो धर्म पथ पर आरूढ़ है उसका कष्ट दूर करने के लिए भक्तवत्सल भगवान् स्वयं तत्पर रहते हैं। महाभारत के युद्ध के पश्चात् पूर्वाग्रह-ग्रस्त एवं क्रोधान्ध अश्वत्थामा के शक्ति-प्रहार से माता उत्तरा के गर्भ में स्थित शिशु (परीक्षित) का जीवन बचाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी योगशक्ति का भी प्रयोग कर देते हैं। यह कथा श्रीमद्भागवत में विस्तार के साथ वर्णित है। श्री मद्भागवत-पुराण के यशस्वी विद्वान् डा. जयनन्दन पाण्डेयजी ने कथा कहने की शैली में इस स्थल का भावपूर्ण चित्रण यहाँ किया है। "- इसी कथा से

महाभारत का युद्ध लगभग समाप्त होने पर था। युद्ध में कौरव एवं पाण्डव पक्ष के बहुत से वीर वीरगति को प्राप्त कर चुके थे और भीमसेन की गदा के प्रहार से दुर्योधन की जंघा टूट चुकी थी। दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए गुरु द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने सोचा कि मैं भी छल और कपट से पाण्डवों का वध करूँगा। निश्चित रूप से पाण्डव जब रात में सो जाएँगे तब उन्हें मैं मार डालूँगा। लेकिन जिसका रक्षक स्वयं भगवान् हों, भला उसे कौन मार सकता है? भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें सोते हुए से जगा दिया और गंगा-स्नान हेतु अपने साथ चलने को कहा।

पाण्डवों ने भी बिना सोचे-विचारे आज्ञापालक की तरह पीछे-पीछे चल दिया। भगवान् ने पाण्डव पुत्रों को भी अपने साथ चलने को कहा, परन्तु 'हमें नींद आ रही है हम रात में स्नान के लिए नहीं जा पाएँगे' ऐसा कहकर पाण्डव-पुत्र पाण्डवों के स्थान पर सो गए। सुप्तावस्था में ही पाण्डव-पुत्रों को अश्वत्थामा ने मार डाला। इसकी सूचना जैसे ही द्रौपदी को मिली वह पुत्र-शोक मे विह्वल हो गयी। द्रौपदी की पीड़ा देखकर अर्जुन ने अश्वत्थामा को मारने की प्रतिज्ञा कर डाली परन्तु सामने आने पर उसे मारने की हिम्मत अर्जुन को नहीं हो रही थी। अश्वत्थामा कोई और नहीं अपितु साक्षात् गुरु-पुत्र हैं। ऐसी स्थिति में अश्वत्थामा का वध करना अर्जुन के लिए धर्मसंकट-सा हो रहा था। अर्जुन की ऐसी दशा देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा-

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम्।
प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित्॥

हे अर्जुन! धर्मज्ञानी व्यक्ति असावधान, मतवाले, भयभीत शत्रु को कभी नहीं मारते। परन्तु इस पापी अश्वत्थामा ने तुम्हारे सोये पुत्रों को मारा है, इसलिए इसे मार ही डालो। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन की धर्म-परीक्षा लेने के लिए ऐसा कहा, तथापि अर्जुन के मन में गुरु-पुत्र को मारने की इच्छा नहीं हुई। बल्कि अर्जुन ने उसे बाँधकर खींचते हुए द्रौपदी के पास लाया। उस समय द्रौपदी अपने आँगन बैठी हुई थी तथा पुत्र-वियोग में डूबी हुई थी। अश्वत्थामा की ऐसी दशा देखकर द्रौपदी दौड़

पड़ी। द्रोण-पुत्र का वन्दन करती हुई द्रौपदी कहती है कि मेरे आँगन में इस ब्राह्मण का अपमान मत करो। इन्हें छोड़ दो। ये हमारे लिए अत्यन्त पूजनीय ब्राह्मण हैं। जिस गुरु की कृपा से अपने धनुर्विद्या के समस्त गूढ़ रहस्यों को जाना है, ये उन्हीं के पुत्र हैं, इसलिए इन्हें मत मारो।' यह द्रौपदी का उदात्त विचार था। भला आज की कोई माँ, जिसके पाँच पुत्रों का हत्यारा उसके आँगन में खड़ा हो, बिना मारे छोड़ देगी क्या? नहीं, कदापि नहीं। ऐसा करके द्रौपदी ने एक सुन्दर आदर्श उपस्थापित किया है।

इसीलिए श्रीमद्भागवत कथा बनी है। भागवत कथा सुनकर अपने जीवन को सुधारने की बात उसमें कही गयी है। वैर की शान्ति निर्वेद तथा प्रेम से होती है; वन्दना से होती है। द्रौपदी का अपने प्रति ऐसा व्यवहार देखकर अश्वत्थामा सोचता है कि सचमुच में द्रौपदी वन्दनीय है। उसने द्रौपदी से कहा कि द्रौपदि, लोग जो तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, वह कम है। तुम तो वैर का बदला प्रेम से देती हो। यह तुम्हारी विशेष महत्ता है। इसके बाद द्रौपदी ने अर्जुन से कहा- 'इसे छोड़ दीजिए, शीघ्र छोड़ दीजिए। क्या आप सब भूल गए? इसके पिता गुरु द्रोण ने जो विद्या अपने पुत्र को नहीं दी, वह विद्या आपको दी है।' अश्वत्थामा को बचाते हुए द्रौपदी ने कहा कि अगर इसे मार भी दिया जायगा तो क्या मेरे पाँचों पुत्र जीवित हो जायेंगे, नहीं, बल्कि इसकी माता गौतमी अधिक दु:खी होगी। मैं अभी सधवा हूँ और इसकी माता विधवा। वह तो अपने पति का वियोग अपने पुत्र को सामने देखकर सह रही है। गौतमी का रोदन मैं यह नहीं सकती। इसलिए इसे छोड़ दीजिए।

इस पर भीमसेन ने कहा कि आततायी को मारने में कोई दोष नहीं। अश्वत्थामा आततायी है इसलिए इसे मार ही देना चाहिए। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा-

वपनं द्रविणादानं स्थानान्तिर्यापणं तथा।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः॥

मूँड़ देना, धन छीन लेना और स्थान से बाहर निकाल देना, यही अधम ब्राह्मणों के लिए वध है। इसीलिए इसका अपमान कर इसे बाहर निकाल दीजिए। तब अश्वत्थामा का मस्तक न काटते हुए उसके मस्तक से जन्मसिद्ध मणि को निकाल लिया गया। वह तेजोहीन हो गया।

अश्वत्थामा को लगा इससे अच्छा तो मुझे मार ही दिया जाता, जो मेरे लिए अच्छा था। अश्वत्थामा ने सोचा कि पाण्डवों ने मेरा अपमान किया है। इसका बदला में अवश्य लूँगा। मैं भी अपना पराक्रम अवश्य दिखलाऊँगा। इस समय 'उत्तरा' गर्भवती है। उसके पेट में गर्भस्थ शिशु पाण्डवों का एक मात्र उत्तराधिकारी है। मैं उसका सर्वनाश करूँगा।' न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।' ऐसा सोच कर उसने उत्तरा के गर्भस्थ शिशु पर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। ब्रह्मास्त्र के दुष्प्रभाव से उत्तरा व्याकुल होने लगी। 'हरिस्मरण' ही एक मात्र सहारा रह गया। इस पर भी पीड़ा नहीं कमी। ब्रह्मास्त्र के जहर से उत्तरा का गर्भ जलने लगा। उत्तरा दौड़ती हुई श्रीकृष्ण के पास आयी है। तब उत्तरा के गर्भ में जाकर स्वयं श्रीकृष्ण ने शिशु का रक्षण सुदर्शन चक्र से किया है। यों तो भगवान् समस्त जीव मात्र की रक्षा गर्भ में करते हैं लेकिन यहाँ तो सामान्य रक्षा नहीं, बल्कि ब्रह्मास्त्र से रक्षा करनी थी, अतः विशेष परिस्थिति थी।

गर्भस्थ शिशु जिसका बाद में नाम परीक्षित रखा गया, उसने गर्भ में देखा कि एक भयानक अग्नि-स्फुलिंग उसके नाश के लिए उसकी ओर चला आ रहा है। परन्तु उसी क्षण उसने यह भी देखा कि एक कान्तिमान् बालक ने जो लगभग उसी की आयु का है, हाथ में स्थित चक्र से अग्निस्फुलिंग को शान्त कर दिया है। यह देखकर उसकी आत्मा उस चक्रधारी बालक के प्रति कृतज्ञता के भाव से भर उठी।

परीक्षित ने इस अदृश्य, अपूर्व, दिव्य व्यक्ति को समझने का भरपूर प्रयास किया। वह कौन है? वह अवश्य ही मेरे साथ गर्भ में स्थित होगा। क्योंकि मेरे देखने के साथ ही उसने भी ब्रह्मास्त्र बाण को देखा परन्तु उसकी शक्ति और क्षमता इतनी पूर्ण है कि मुझ तक बाण को पहुँचने के पूर्व ही उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया। क्या वह मेरा सहोदर है? अगर वह सहोदर है, तो उसके हाथ में चक्र है, मेरे हाथ में क्यों नहीं है? नहीं-नहीं, वह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं। इसी प्रकार के तर्क-वितर्क को परीक्षित बहुत काल तक अपने मन में करते रहे।

परीक्षित उस अलौकिक रूप और मुखाकृति को भूल नहीं सके। उस श्याम सुन्दर मन-मोहक रूप को देखने के लिए परीक्षित का मन हमेशा तत्पर रहता था। परीक्षित के मन में बार-बार ऐसा भाव बनता था कि वह कौन है जो नाटकीय रूप से गर्भ में आकर मेरी रक्षा कर पुनः अदृश्य हो गया? वह चाहे कोई भी रहा हो, उसे देखने की लालसा परीक्षित के मन में बराबर बनी रही। इसी प्रकार का चिन्तन व मनन करते परीक्षित अपनी माता के गर्भ में पलते एवं बढ़ते रहे। श्रीकृष्ण की उस अद्भुत छवि को निरख, व स्मरण करते परीक्षित स्वयं भी अद्भुत कान्ति वाले बन गए। पूर्ण समय के बाद जब वे गर्भ से बाहर आए तो प्रसूति-कक्ष एक विचित्र ज्योति से ज्योतिर्मय हो उठा। प्रसूतिका-कक्ष की समस्त सेविकाएँ इस अद्भुत तेजयुक्त बालक को देखकर आश्चर्य चकित एवं निर्वाक् हो गईं।

सुभद्रा, जो परीक्षित की दादी थी, उसने इस शुभ समाचार को महाराज युधिष्ठिर के पास भिजवाया 'अब आप पितामह हो गये। अभिमन्यु को पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है।' सभी पाण्डव-बन्धु इस शुभ समाचार की प्रत्याशा में थे ही, अतः इस खबर को सुनकर सभी आनन्द विभोर हो गये। सम्पूर्ण हस्तिनापुर में यह सूचना फैल गई कि पाण्डव-कुल का उत्तराधिकारी उत्पन्न हो चुका है। राजधानी इन्द्रप्रस्थ का

कोना-कोना आह्लादित हो गया था। ब्राह्मणों, सेवक-सेविकाओं एवं गरीबों के बीच सुन्दर वस्त्र, आभूषण तथा तरह-तरह की मिठाईयाँ बाँटी गयीं।

दूसरे दिन महाराज ने राज्य घराने के पुरोहित श्री कृपाचार्य जी को बुलवाया और उस नवजात शिशु का कुलोचित जात-कर्म-संस्कार करवाया। ऐसे पुनीत अवसर पर विद्वान् ब्राह्मणों को रेशमी वस्त्र एवं दक्षिणाएँ ही गयीं। तत्पश्चात् विद्वान्, ब्राह्मण संतुष्ट होकर अपने-अपने घर गए।

तीसरे दिन महाराज युधिष्ठिर ने राज्य के प्रसिद्ध ज्योतिषियों, पण्डितों एवं हस्त-रेखा विशेषज्ञों को बुलाकर उस बालक की ग्रह-दशा पर विचार करने को कहा। पुनः निवेदन करते हुए कहा- हे विद्वद्जन, आप सभी त्रिकालज्ञ हैं; भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान के ज्ञाता हैं। आपको दैवज्ञ नाम से भी जाना जाता है। अतः आप इस बालक के जन्म-लग्न पर सम्यक् विचार करते हुए बताएँ कि जातक की ग्रह-दशा इस समय कैसी है, इसपर कैसा प्रभाव डालेगी।

ज्योतिर्विद् पण्डितों ने तत्क्षण कुण्डली बनायी और उसके फलाफल पर विचार करते हुए पण्डितों ने घोषणा की कि महाराज, आजतक हमने जितनी भी कुण्डलियाँ बनाई हैं उनमें यह विलक्षण है। जन्मकुण्डली के अनुसार सभी शुभग्रह इस जातक के जन्म के समय एकत्र हैं जिससे सभी शुभ गुण इस बालक में दीखते हैं। यह तो साक्षात् मनु के रूप में आपके वंश में उत्पन्न हुआ है। पण्डितों की ऐसी वाणी सुनकर महाराज युधिष्ठिर के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। युधिष्ठिर ने विनम्रतापूर्वक झुकते हुए तथा पण्डितों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा कि आप सब यह बताएँ कि इस बालक का ब्राह्मणों सन्तों एवं गुणवन्तों के प्रति कैसा व्यवहार रहेगा?

पण्डितों की अध्यक्षता कर रहे सर्वश्रेष्ठ आचार्य ने कहा- राजन्। आप सन्देह न करें। यह बालक ज्ञानियों, ब्राह्मणों एवं देवताओं का सदैव आदर करेगा। शास्त्र विहित अनेक धर्मानुष्ठानों एवं यज्ञों को करेगा। इसके द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का भी संकेत इसकी जन्म-कुण्डली में है। अबतक भरत वंश में जितने भी राजा उत्पन्न हुए हैं उनमें यह सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होगा।

बालक की प्रशंसा में कहे गए समस्त सद्गुणों को सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर अतिशय प्रसन्न हुए तथा पण्डितों को अनेक गाएँ, मणि-मणिबन्ध तथा स्वर्णाभूषण प्रदान किए। पुनः युधिष्ठिर ने पूछा-क्या इस बालक के शासन काल में कोई बड़ा युद्ध भी होगा? पण्डितों ने कहा कि यह बालक अजातशत्रु होगा, इसका किसी से युद्ध नहीं होगा। इतना सुनने के बाद युधिष्ठिर के साथ-साथ अन्य भाईयों को भी परम संतोष हुआ, क्योंकि उन सबों ने युद्ध के भयानक दृश्य एवं कुपरिणामों को अपनी आँखों से देखा था।

अभी भी युधिष्ठिर के मन में एक जिज्ञासा बनी हुई थी। वे बालक के अन्तिम परिणाम को अभी जान लेना चाहते थे, जिसे अन्य कोई जानना नहीं चाहता है। फिर भी युधिष्ठिर ने पण्डितों से कहा, यद्यपि यह बालक यशस्वी, लोकप्रिय, सर्वगुण-सम्पन्न, धर्मानुरागी तथा अनेक धर्मानुष्ठानों को करनेवाला होगा फिर भी मैं जानना चाहता हूँ कि -'इसका अन्त कैसे होगा'? इसपर भाईयों ने कहा- मृत्यु अवश्यम्भावी है। इसके लिए अभी से इतना चिन्तित होना उचित नहीं। आप अभी से इस रहस्य को जानने के

लिए उत्सुक क्यों हैं? परन्तु महाराज युधिष्ठिर इस महान् धर्मनिष्ठ बालक का प्रयाण करने का कारण अवश्य जान लेना चाहते थे। महाराज ने पुनः ज्योतिषियों से अपने प्रश्न का उत्तर देने को कहा- ज्योतिष विद्या के सबसे दक्ष पण्डित ने जन्मपत्र की पुनः गणना करते हुए कहा- 'यह बालक एक मुनि के शाप से अपने राज्य का त्याग कर देगा।' ऐसा सुनकर युधिष्ठिर को महान् आश्चर्य हुआ कि ऐसा धर्मनिष्ठ राजा किसी मुनि से कैसे शापित हो सकता है? राजा चिन्ता में डूब गए। पुनः उस पण्डित ने कहा- 'मेरी गणना के अनुसार उसी मुनि के शाप के कारण इसे एक सर्प डसेगा और इसकी मृत्यु सर्प-दंश से होगी, इसमें कोई संशय नहीं।' महाराज युधिष्ठिर का सारा हर्ष क्षण भर में तिरोहित हो गया और वे गंभीर निराशा में डूब गए।

अत्यन्त दुःखी एवं निराश युधिष्ठिर ने मन में सोचा- 'इस बालक का कैसा दुर्भाग्य है जिसकी मृत्यु साँप काटने से होगी। ऐसी शास्त्रोक्ति है कि जो वृक्ष से गिरकर, जल में डूब कर, अग्नि में जलकर, साँप के काटने से अथवा वज्रपात से मरता है उसकी सद्गति नहीं होती है अपितु उसकी अकाल-मृत्यु मानी जाती है। ऐसी मृत्यु प्राप्त करनेवाले प्रेत-योनि को पाकर बड़े कष्ट को प्राप्त करते हैं।' इस बालक के दुःखद अन्त पर युधिष्ठिर रो पड़े।

हस्तिनापुरनरेश महाराज युधिष्ठिर की ऐसी अन्तर्दशा देखकर विद्वान् ज्योतिषाचार्य ने धैर्य दिलाते हुए कहा- 'राजन्! आप चिन्तित न हों और अपने शोक का परित्याग करें। इस बालक की जन्म-कुण्डली में दो ऐसे भी शुभ ग्रह हैं जिनके संयोग से इन्हें सुफल प्राप्त होंगे। एक से भक्ति-योग और दूसरे से वैराग्य-योग। जिसके फलस्वरूप अपनी मृत्यु के पूर्व ही यह बालक अपना राज्य अपने पुत्र को सौंपकर विरक्त भाव से गंगा के पावन तट पर जाकर अपने आपको प्रभु चरणों में समर्पित कर देगा। उसी गंगा-तट पर व्यासनन्दन शुकदेवजी के श्रीमुख से श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं और कथाओं का अमृतपान करेगा। श्रीमद्भागवत कथा के अन्तिम सातवें दिन प्रभु का गुणगान एवं स्मरण करते हुए इसकी मृत्यु होगी। भक्ति-योग में पूर्णता प्राप्ति के कारण इसे मोक्षोपलब्धि होगी तथा जन्म-मरण के बन्धन से यह सर्वथा मुक्त हो जायगा।'

ज्योतिषाचार्य के ऐसे कथन के बाद महाराज युधिष्ठिर की सारी चिन्ताएँ दूर हो गईं और वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। साथ ही, उन्होंने ऐसा कहा कि अगर जन्मकुण्डली यही कहती हो तो यह अभिशाप नहीं, बल्कि वरदान है।

डॉ. जयनन्दन पाण्डेय
राष्ट्रपतिपदकप्राप्त अध्यापक
इन्दु निकेतन, राजगीर

❑

अद्‌भुत है हमारा शरीर

डा. नीरज कुमार मिश्र

महाकवि कालिदास ने कुमारसंभव के पाँचवें सर्ग में कहा है- "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।" अपने शरीर की रक्षा करना धर्म का पहला साधन होता है। यहाँ विभिन्न प्रकार के रोग, जो अनुचित आहार-विहार से उत्पन्न होते हैं, उन रोगों से शरीर की रक्षा करना यहाँ मुख्य रूप से अभिप्रेत है। आयुर्वेद शास्त्र में इसके लिए अनेक उपाय बतलाये गये हैं। सुश्रुत-संहिता में 'स्वस्थवृत्तम्' नामक एक अध्याय है, जिसमें स्वास्थ्य की रक्षा के लिए दैनिक कर्तव्य एवं त्याग का वर्णन हुआ है। स्वास्थ्य-चर्चा में हम अगले अंक से इस अंश को क्रमशः प्रकाशित करते रहेंगे। इस चर्चा की भूमिका के रूप में यहाँ आयुर्वेद के अधीती चिकित्सक डा. नीरज कुमार मिश्र का लेख यहाँ प्रस्तुत है।

मनुष्य शरीर एक अनसुझी पहेली-सी है। आर्ष-ग्रन्थों से लेकर आधुनिक चिकित्सा शास्त्रों में जो नित्य नवीन गुत्थियाँ सुलझाने का प्रयत्न है सचमुच अजूबे इस संरचना की पूर्णता तक पहुँचने का प्रयास है। एक सूक्ष्म-सा अणु (रज) जब विभिन्न प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा पोषित होकर शरीर रूप धारण करता है वह भी विभिन्न रूप, रंग, स्वभाव, बनावट में बिल्कुल एक दूसरे शरीर से भिन्न हैं। आयुर्वेद शास्त्र में ''यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'' यानी ब्रह्माण्ड में जितने तत्त्व, अणु, परमाणु बिखरे पड़े हैं इस शरीर में उतनी ही सारी विलक्षणताएँ दिखाई देती हैं। जन्म हेतु माँ के उदर में वीर्य कणों के समावेश से बालक रूप में जन्मे मनुष्य स्त्री या पुरुष दोनों अपने-आप में ईश्वर की असीम कलात्मकता के परिचायक हैं। बाल, किशोर, युवा एवं वृद्धावस्था इस शरीर की विकास यात्रा के पड़ाव हैं।

आहार, निद्रा, भय एवं काम जन्म के साथ ही शरीर के रूप में सन्निहित रहते हैं; शरीर की विकास यात्रा के साथ इनमें उत्तरोत्तर वृद्धि, ह्रास, होते रहते हैं। यही मन एवं आत्मा का विकसित रूप बुद्धि, ज्ञान संस्कार आदि के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

चाणक्य-नीति में उल्लेख है:

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम् ।

अर्थात् पशु एवं मनुष्य दोनों के जन्म की प्रक्रिया समान हाती है केवल ज्ञान, बुद्धि एवं संस्कार हमें पशुओं से भिन्न करते हैं। संस्कार संवर्द्धन हेतु मानव-योनि में जन्म लेने वाले सभी मनुष्यों को विधाता ने बुद्धि एवं ज्ञान के सर्जन हेतु मस्तिष्क प्रदान किया है। आखिर क्यों कोई बालक बड़ा सुविख्यात पुरुष होता है और कोई कुख्यात नर-पिशाच हो जाता है; अब तक यह चिकित्सा-विज्ञान के सामने एक प्रश्नचिह्न है।

इस आलेख का विषय शरीर क्रिया की कुछ विशेष पद्धति से है, अतः एक बात यह विदित है कि यह शरीर रुग्ण और लाचार भी पड़ जाता है, रोगों के कारण असमय काल-कवलित-सा हो जाता है।

तो क्या हम स्वस्थ हैं? आयुर्वेद चिकित्सा ग्रन्थों ने स्वस्थ शरीर की परिभाषा कुछ यूँ दी है ।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थमित्यभिधीयते।। (सुश्रुत-संहिता, सूत्रस्थान, 16.48)

1. वात पित एवं कफ शरीर में तीन क्रियाशील तत्त्व दोष होते हैं। पंचतत्त्व से शरीर की रचना में इन तीन तत्त्वों का संवहन शरीर मृत्यूपरान्त करता है इनकी समान अवस्था स्वास्थ्य की पहली शर्त है।

2. समाग्नि- कामग्नि, क्रोधाग्नि, जठराग्नि इत्यादि समान अवस्था में होनी चाहिये।

3. समधातु- अष्टधातु या विभिन्न Elements लौहतत्त्व, कैल्सियम, प्रोटीन, इत्यादि धातु समान अवस्था में होनी चाहिये ।

4 मल-क्रिया- शरीर के मल निष्कासन- मल, मूत्र, स्वेद, थूक, खखार, पसीना इत्यादि ।

5. प्रसन्नात्मयेन्द्रियमनः- आत्मा एवं इन्द्रियाँ तथा मन को प्रसन्न रहना चाहिए। इन पाँच मापदण्डों को पूरा करनेवाले शरीर को ही स्वस्थ कहा जाता है। मन आत्मा एवं इन्द्रियों की प्रसन्नता हमारे शरीर के स्वास्थ्य की रीढ़ है । शरीर के पोषण एवं संवर्द्धन के साथ हमें मन एवं प्राणों की पवित्रता एवं प्रसन्नता की शर्त पूरी करनी होती है ।

हमारे शरीर में रक्त संचार (cerculatry system) हेतु सूक्ष्म नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है। ये अतिसूक्ष्म स्नायु, हमारे मन, मस्तिष्क, हृदय एवं अति कोमल तन्तुओं द्वारा नख से शिख तक फैले हैं। हमारे हृदय से निकलनें वाली रक्त नलिकाएँ शिरा एवं धमनी से प्रवाहित होकर शरीर की जीवन क्रिया को संचालित करती है। एक स्वस्थ शरीर में वैज्ञानिक विश्लेषण में यह आया हैं कि हमारे शरीर में 5 से 6 लीटर तक रक्त मौजूद रहते हैं, इसमें 5 लीटर रक्त का स्वसंचालित स्नायविक रचना में गतिशील रहता है एवं 1 लीटर रक्त किसी आपातकालीन अवस्था से निबटने के लिये रिजर्व (सुरक्षित) रहता है। इस प्रकार 24 घंटे में लगभग 13 हजार लीटर रक्त शरीर के अन्दर हृदय कोशिकाओं द्वारा आयात निर्यात होता रहता है। रक्त के लाल रक्त कण की कमी पड़ने पर हिमोग्लोबिन की मात्रा कम हो जाती है तब हमें एनीमिया यानी रक्ताल्पता का शिकार होना पड़ता है। थकान, अनिद्रा, बेचैनी, चक्कर आना काम करने की क्षमता में कमी, इसी के परिणाम हैं। रक्त के अभाव में मस्तिष्क तीन मिनट जबकि हृदय पाँच मिनट तक ही जीवित रह सकता है। युवा शरीर में लगभग 25 लाख करोड़ लालरक्त कण मौजूद रहते हैं प्रत्येक चार महीने में कुछ घटक का नवीनीकरण शरीर द्वारा होते रहता है। प्रत्येक शरीर में कुछ-कुछ भिन्नता पायी जाती है अतः ब्लडग्रुप को चार विभिन्न रासायनिक संरचना में बाँटा गया है ।

1. A, 2. B, 3. AB, 4. O यही कारण है कि सभी का खून बिना ग्रुप जाँच के एक दूसरे को नही प्रदान नहीं किया जाता है। हवा लगने पर रक्त जम जाता है जमे हुए रक्त को ठोस कण जबकि तरल खून को प्लाज्मा कहते हैं । रक्त जीवन रस है इसमें पायी जानेवाली विकृतियाँ ही विभिन्न रोगों के मूल कारण होते हैं।

रोगों के निदान एवं परीक्षण के लिये शरीर में नाड़ी परीक्षा एवं अष्टविधि प्राथमिक परीक्षण विधि है। इन्हें आयुर्वेद-संहिता में श्लोक के रूप लिखा गया है-

रोगाक्रान्तः शरीरस्य अष्टभागः परीक्षयेत् ।

नाड़ी जिह्वा मलं मूत्रं शब्दस्पर्शदृगाकृति।।

अर्थात् रोगाक्रान्त शरीर के आठ भागों की सूक्ष्म परीक्षा की जाये। यथा नाड़ी- नाड़ी की गति स्पन्दन का स्वरूप गर्म या शीतल, मन्द या तेज, भरी हुई या रिक्त, निरन्तर या अवरोधात्मक इन सारे परीक्षणों से हम नाड़ी द्वारा रोगी की शारीरिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

जिह्वा- जिह्वा द्वारा शरीर के कई विशेष रोग यथा रक्ताल्पता, कृमि, उदर विकार, मानसिक अवस्था अनिद्रा आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं ।

मल-मूत्र- मलमूत्र द्वारा शरीर की अन्य सारी बीमारी का ज्ञान प्राप्त होता है।

शब्द- रोगी के उच्चारण की शब्द ध्वनि से विभिन्न अवस्था, रोगी की स्थिति की उष्मा, शीतलता, तेज, रोमकूपों एवं स्निग्धता की जानकारी प्राप्त होती है ।

दृक् (आँख)- आँख की विभिन्न अवस्था का परीक्षण कर हमें रक्त के लाल कण (हिमोग्लोबीन) पीलिया रतौंधी, दृष्टिदोष एवं अन्य शारीरिक दोष की जानकारी मिलती है ।

आकृति (चेहरा)- चेहरा देख कर कुशल चिकित्सक बिना कहे, पूछे ही बहुत सारी विमारी एवं अन्य शारीरिक तथा मानसिक रोगों का अनुमान द्वारा निदान कर लते हैं।

दर्शन स्पर्श एवं प्रश्न- रोग निदान के प्राथमिक तरीके हैं इनकी सहायता से हम शरीर के लक्षण एवं व्याप्त तकलीफों का ज्ञान प्राप्त कर यथोचित चिकित्सा अपनाते हैं एवं रोगी का उपचार करते हैं।

स्वास्थ्य-वृत- जीवन शरीर से है और इसकी रक्षा हमारा परम धर्म एवं कर्तव्य भी है। स्वास्थ्य रक्षा परम धर्म है। अपनी स्वास्थ्य-रक्षा राष्ट्र की प्रत्यक्ष या परोक्ष सेवा है।

इसके लिये हमें अपनें आहार-विहार की शुद्धता, विचार की शुद्धता, सत्संगति, ध्यान, योग, प्राणायाम, ईश्वरोपासना, शाकाहार, दान-पुण्यकर्म-जैसे सत्कार्य इत्यादि का जीवन में समावेश करना चाहिये ।

रोग तो सामान्य उपचारों से भाग जाते हैं लेकिन व्याधि जैसे असाधारण रोग पक्षाघात, अन्धापन मृगी, उन्माद, विकलांगता इत्यादि जन्मोपरान्त हमारा पीछा नही छोड़ते। इनसे मुक्ति के लिए हमें जीवन के आदर्श कर्म एवं आध्यात्मिक विचारधारा की जीवन शैली को अपनाना आवश्यक होता है। ये हमें बहुत सारी आधि-व्याधि से हमारी परोक्ष रूप से रक्षा करते हैं ।

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में शतायु-साधना के कुछ निर्देश एवं जीवन शैली अपना कर हम जीवन की चारों अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष जैसी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सदा सुखी एवं रोगरहित जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

न हि पथ्यविहीनस्य औषधानां शतैरपि।

अर्थात् पथ्य के विना रोगों की चिकित्सा एक सौ औषधि भी नही कर सकती ।

जीवन में आत्मानुशासन एवं विचार शुद्धि के पथ्य को अपना कर हम शरीर की सौ वर्ष की स्वस्थ एवं समुन्नत यात्रा कर सकते हैं। यह हमारी आयुर्वेद-संहिताओं में वर्णित है।

चरक, सुश्रुत, माधवकर, शार्ङ्गधर इत्यादि जितने संहिताकार हैं सबने विशुद्ध विचार एवं परिष्कृत आचार-पद्धति पर विशेष चर्चा की है। आयें, हम स्वस्थ एवं समुन्नत जीवन-शैली अपना कर अपना तथा सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याणपरक मार्ग अपनायें। जीवन के किये गये कर्म मरणोपरान्त भी हमारा पीछा नही छोड़ते अत: सत्कर्म की ओर प्रेरित रहकर इस जीवन-यात्रा को कुशलतापूर्वक संचालित करना मानवोचित धर्म है।

मेला टाँड, खूँटी (झारखण्ड, आयु:रत्न- R.C.G.P(U.K.)
संजीवन औषधालय, खूँटी (झारखण्ड)
आवास- 'पारिजात' मेलाटाड़, खूँटी (राँची), दूरभाष- 9430343399

ज्योतिष की दृष्टि में मानसिक रोग एवं अस्थमा रोग

डा. राजनाथ झा

गणित-फलित ज्योतिषाचार्य,
विद्यावारिधि,
ज्योतिष परामर्शदाता,
महावीर ज्योतिष मण्डप,
महावीर मन्दिर, पटना

"पृथ्वी के चारों ओर फैले आकाशमण्डल में विभिन्न कोणों पर अवस्थित ज्योतिर्मय ग्रहों एवं नक्षत्रों (तारों का समूह) से निकलनेवाली किरणों के प्रभाव से हम अछूते नहीं हैं। उनका कैसा प्रभाव है यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे किरणें कितनी दूरी से और किस कोण से आ रही हैं। ३० अंश कोण को एक राशि कहते हैं। ये किरणें हमारे शरीर पर अपना अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालतीं हैं। इनसे रोग भी उत्पन्न होते हैं। कोई व्यक्ति पृथ्वी के किस अक्षांश और देशान्तर पर उत्पन्न हुआ और उसके जन्म के समय में कौन ग्रह-नक्षत्र कहाँ पर थे तथा वे ग्रह-नक्षत्र वर्तमान समय में किस कोण से प्रकाश डाल रहे हैं, इनकी गणना के आधार पर ज्योतिष शास्त्र में अनेक प्रकार के रोगों की सम्भावनाएँ तथा उनके उपचार का विवेचन हुआ है। इसी विषय पर महावीर मन्दिर के ज्योतिषी डा. राजनाथ झा का यह आलेख प्रस्तुत है। सं.

भारतीय संस्कृत वाङ्मय में ज्योतिष शास्त्र अत्यन्त प्राचीन काल से है। ऋषियों ने इस शास्त्र को नेत्र की संज्ञा दी है। ज्योतिषशास्त्र के मुख्यतया तीन स्कन्ध माने गए हैं, सिद्धान्त, संहिता, होरा- यही त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिष शास्त्र है। 'अहोरात्र' शब्द से 'होरा' शब्द निष्पन्न हुआ है, होरा का अर्थ व्यावहारिक अर्थ होता है- लग्न। लग्न के ही आधार पर सभी जातक-ग्रन्थ हैं, जिनसे हमें मानव जीवन में होनेवाली तमाम शुभाशुभ फल की जानकारी मिलती है, जिनसे मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर फल बतलाकर ज्योतिषशास्त्र की प्रमाणिकता दैवज्ञ लोग प्रस्तुत करते हैं। जातक-कुण्डली से मात्र उनके भूत एवं भविष्य के फलों का कथन ही नहीं अपितु उनके शारीरिक मानसिक रोगों की जानकारी भी हमें मिलती है। यद्यपि ज्योतिषशास्त्र में लग्न भाव से रोगों का ज्ञान होता है परन्तु रिपु भाव अर्थात् छठे भाव से विशेष रोग तथा शत्रु का विचार किया जाता है।

जैसे कालपुरुष के अंगों में द्वादश राशि अवस्थित है उसी तरह द्वादश भाव भी अवस्थित हैं।

शिरो वक्त्रोरोहृज्जठरकटिवस्तिप्रजनन-
स्थलान्यूरूजान्वोर्युगलमिति जंघे पदयुगम्।
विलग्नात्कालांगान्यलिझषकुलीरान्तिममिदं
भसन्धिर्विख्याता सकलभवनान्तानपि परे॥

फलदीपिका, राशिभेद: श्लोक- 4

इस प्रकार, मानव शरीर के किस अंग में कौन सी राशि अवस्थित है, इसकी जानकारी दी गयी है मेष- सिर, वृष- मुख, मिथुन- कंधा, कर्क- हृदय, सिंह- उदर, कन्या- कमर, तुला- पेडू, वृश्चिक- लिंग, धनु- जंघा, मकर- दोनों घुटने, कुम्भ- दोनों पिडलियाँ तथा मीन- दोनों पैर है पर निरूपित किया गया है। इसी तरह द्वादश भावों का भी क्रम इस प्रकार है:- प्रथम भाव शिर। द्वितीय भाव- मुख। तृतीय भाव- वसा। चतुर्थभाव- हृदय। पंचम भाव- उदर। षष्ठ भाव- कटि। सप्तम भाव- पेडू। अष्टम भाव- गुप्तांग। नवम भाव- जंघा। दशम भाव- दोनों घुटने। एकादश भाव- दोनों पिण्डलियाँ। और द्वादश भाव- पैर होते हैं।

इस प्रकार, जातक की कुण्डली में जो राशि तथा जो भाव दूषित होता होगा, जातक उस अंग से सम्बन्धित रोग से ग्रस्त होंगे। भावेश ग्रह, राशि जन्य अंगों में रोग उत्पन्न करते हैं, फिर भावस्थित ग्रह एवं राशि से इसका विचार किया जाता है।

जब कोई ग्रह अकारक (निष्प्रभावी) ग्रह छठे भाव के स्वामी या छठे भाव में स्थित हो जाता है तो अपने बल के अनुसार अपनी दशा-अन्तर्दशा में अपने से सम्बन्धित अंग में रोग उत्पन्न करता है। मूलतः रोग जानने के लिए जन्मकुण्डली में इस प्रकार से विचार किया जाता है। कारक भाव (रोगों के प्रभावी भाव), कारक ग्रह, कारक राशि, पापग्रह; सूर्य, राहु, शनि, मंगल, केतु), छठे भाव तथा छठे भावस्थ ग्रह से रोग की गणना की जाती है। कोई भी रोग होने के लिए निम्नलिखित योग महत्त्वपूर्ण होते हैं।

1. कारक ग्रह भाव का कमजोर होना जो अंग बीमारी से पीड़ित होगा उस भावेश का निर्बल होना।

2. विभिन्न ग्रह अपने अपने गुणों के अनुसार विभिन्न रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं, यदि वह ग्रह छठे भाव के स्वामी या छठे भाव से युति करे तो रोग से पीड़ाकारक होता है।

3. यदि पापग्रह किसी रोग का कारक ग्रह कारक राशि, कारक भाव, छठे भाव के स्वामी या छठे भावस्थ ग्रह से अथवा कारक पापग्रह से पीड़ित हो जाता है तो उस भाव से सम्बन्धित रोग की कारक होते हैं।

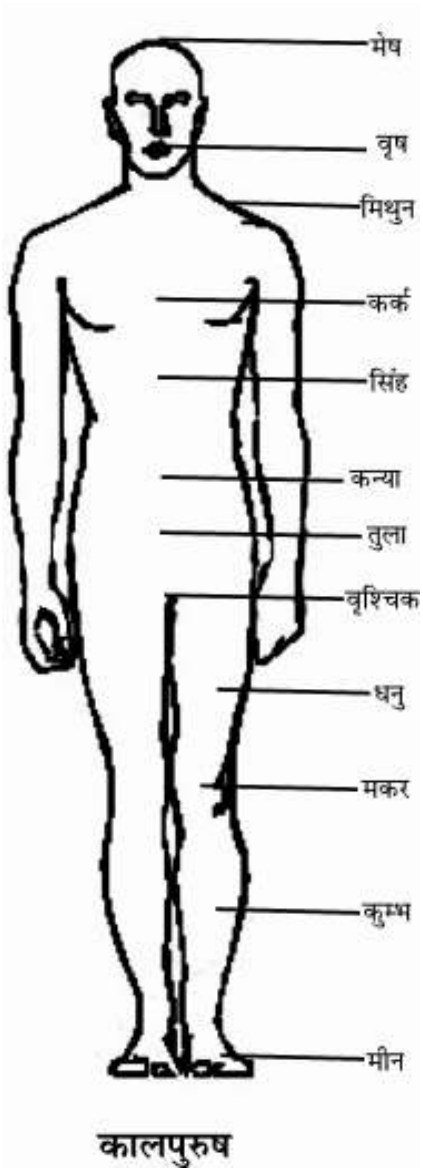

कालपुरुष

मानसिक रोग-

वैदिक वचन है- ''चन्द्रमा मनसो जातः'' अर्थात् चन्द्रमा मन के कारक ग्रह होते हैं, मन पर चन्द्रमा का पूर्ण अधिकार है, चित्त की वृत्ति की जानकारी हमें चन्द्रमा से ही प्राप्त होती है। हमारे पूर्वाचार्य दैवज्ञों ने भी इस बात को ही माना है। वराहमिहिर ने भी अपने ग्रन्थ **बृहज्जातक** में चन्द्रमा को मन का कारक ग्रह बतलाया है।

कालात्मा दिनकृन्मनश्च हिमगुः सत्त्वं कुजो ज्ञो वचो
जीवो ज्ञानसुखे सितश्च मदनो दुःखं दिनेशात्मजः।
राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता कुमारो बुधः
सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ प्रेष्यः सहस्रांशुजः॥

बृहज्जातक ग्रहयोनिप्रभेदाध्यायः, श्लोक-1

सूर्य परमेश्वर की आत्मा है, चन्द्रमा मन, मंगल बल, बुद्ध वाणी, गुरु ज्ञान और सुख, शुक्र काम तथा शनि कालपुरुष का दुःख है। सूर्य चन्द्रमा राजा, मंगल सेनापति, बुध युवराज, गुरु एवं शुक्र मन्त्री तथा शनि भृत्य अर्थात् दास है। वराहमिहिर के अनुसार चन्द्रमा मानसिक रोग के कारक होते हैं तथा पागलपन के भी कारक होते हैं।

मूकोन्मत्तजडान्धहीनवधिर प्रेस्याः शशांकोदये।

बृहज्जातक भावाध्याय, श्लोक- 1

जातक-पारिजातकार दैवज्ञ वैद्यनाथ ने उद्धृत किया है।

कालस्यात्मा भास्करश्चित्तमिन्दुः सत्त्वं भौमः स्यादवश्चन्द्रसूनुः।
देवाचार्यः सौख्यविज्ञानसारः कामः शुक्रो दुःखमेवार्कसूनुः॥

अर्थात् काल पुरुष की आत्मा सूर्य, चन्द्रमा मन, मंगल धैर्य व मानसिक संतुलन, बुध वाणी, गुरु सब सुखों का कारक, शुक्र- काम सुख, भौतिक सुख तथा ऐश्वर्य का प्रतिनिधित्त्व करता है। शनि सब दुःखों का कारक माना गया है। जन्म समय में जो ग्रह बली होगा जातक उसी ग्रह के गुण से युक्त होंगे।

'**उत्तरकालामृत**' में दैवज्ञ कालिदास ने भी चन्द्रमा को मन का कारक ग्रह कहा है:-

बुद्धिः पुष्पसुगन्धदुर्गगमनव्याधिद्विजालस्यक-
श्लेष्मापस्मृतिगुल्मभावहृदयस्त्रीसौम्यपापाम्लकाः॥

उत्तरकालामृत, कारकत्त्व खण्ड, श्लोक- 26

बुद्धि, फूल, सुगन्ध, दुर्ग की ओर जाना, रोग, ब्राह्मणत्व, आलस्य, कफ, मिरगी, मानसिक भाव एवं हृदय के बारे में चन्द्रमा से जाना जाता है-

फलदीपिकाकार का कथन है-

रोगस्य चिन्तामपि रोगभावस्थितैर्ग्रहैर्वाव्ययमृत्युसंस्थैः।
रोगेश्वरेणापि तदन्वितैर्वा द्विट्वादिसंवादवशाद् वदन्तु॥

फलदीपिका रोगचिन्ताध्याय, श्लोक- 1

जातक की कुण्डली के आधार पर मुख्यतया रोग का विचार निम्नलिखित विधि से किया जाता है:-

1. रोगभाव अर्थात् रिपुभाव में स्थित ग्रह से।

2. अष्टम और द्वादश भावस्थ ग्रह से।

3. षष्ठेश एवं षष्ठेश से संयुक्त ग्रहों से, दो अथवा तीन प्रकार से यदि एक ही रोग हो, तो रोग कहना चाहिए।

चन्द्रमा यदि लग्न में हो तो जातक मुखहीन अर्थात् गूँगा, उन्मत्त, पागल, मूर्ख, अन्धा, नीचकर्मकर्त्ता वधिर और भृत्य सेवक आदि होते हैं। वराहमिहिर का कथन है :-

संस्पृष्टः पवनेन मन्दगयुते द्यूने विलग्ने गुरौ
सोन्मादोऽवनिजे स्थितेऽस्त भवने जीवे विलग्नाश्रिते।

तद्वत् सूर्यसुतोदयेऽवनिसुते धर्मात्मजद्यूनगे
जातो वा ससहस्ररश्मितनये क्षीणे व्यये शीतगौ।

बृहज्जातक अध्याय 23, श्लोक-13

यदि सप्तम में शनि और लग्न में गुरु हो तो व्यक्ति बात व्याधि युक्त होता है। यदि मंगल सप्तम भाव में और लग्न भाव में गुरु हो तो उन्माद (पागल) होता है यदि शनि लग्न में और मंगल, नवम, पंचम, सप्तम भाव में हो तो भी जातक पागल होता है। यदि क्षीण चन्द्रमा शनि के साथ व्यय भाव में हो तो जातक पागल होता है।

जातक-पारिजात में उन्माद रोग के बारे में बताया गया हैं-

लग्ने रवौ भूमिसुते कलत्रे सून्मादभाक् तत्र नरो हि जाताः।
उन्मादबुद्धिं समुपैति लग्ने शनौ कलत्रे सकुजे त्रिकोणे॥

लग्न में सूर्य सप्तम में मंगल हो तो व्यक्ति उन्माद से ग्रसित होता है। लग्न में शनि का पंचम, सप्तम एवं नवम भाव में मंगल हो तो इस योग से व्यक्ति उन्मादी स्वभाव वाला होता है तथा पागलपन के भी शिकार होता है।

'प्रश्न-मार्ग' में लिखा है-

लग्नस्थे धिषणे दिवाकरसुते भौमेऽथवा द्युनगे
मन्दे लग्नगते मदात्मजतपःसंस्थे महीनन्दने।

(ज्योतिष-रत्नाकर, अरिष्टाध्याय)

यह योग इन दो पुस्तकों में पाया जाता है। रोग मानसिक रोग के कारक चन्द्रग्रह होते हैं, इस विषय पर **फलदीपिका** में कहा गया है।

निद्रालस्यकफातिसारपटिकाः शीतज्वरं चन्द्रमाः
शृङ्गज्ञाहतिमग्निमान्द्यमरुचिं योषिद्व्यथाकामिलाः।
चेतः शान्तिमसृग्विकारमुदकाद्वीतिं च बालग्रहाद
दुर्गाकिन्नरधर्मदेवफणभृद् यस्याश्च भीतिं वदेत्॥

चन्द्रमा से निद्रा-सम्बधी, अतिनिद्रा, अनिद्रा आलस्य, कफविकृति, अतीसार, फोड़ा, शीतज्वर जल में रहने वाले जीव से भय, मन्दाग्नि, अरुचि, स्त्रीजन्य व्याधि, कमला रोग, मानसिक श्रान्ति, चन्द्रमा के दूषित होने से होते हैं।

मस्तिष्क सम्बन्धी रोग-

कारक भाव- प्रथम, द्वादश।

कारक ग्रह - सूर्य, चन्द्रमा।

जब लग्न और द्वादश भाव एवं लग्नेश और द्वादशेश, सूर्य और चन्द्रमा पापग्रह विशेषकर राहु एवं मंगल से ग्रसित होते हैं, अपनी शुभत्व-क्षमता खो दते हैं, तो मानसिक रोग उत्पन्न होता है।

उदाहरण-

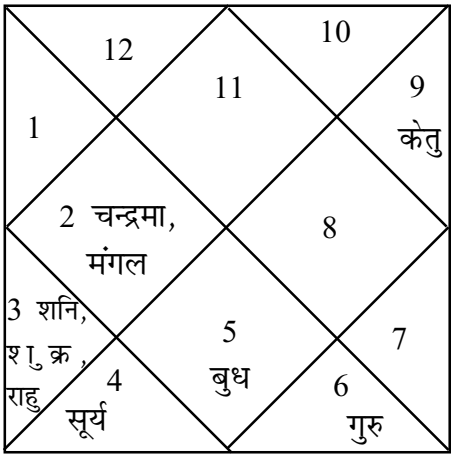

प्रस्तुत कुण्डली में षष्ठेश चन्द्रमा, मंगल से युक्त है, सूर्य की दृष्टि द्वादश भाव पर पड़ रही है। सप्तमेश सूर्य, रोग भाव में बैठे हैं। द्वितीयेश गुरु की दशा में केतु की अन्तर्दशा आने पर जातक भंयकर पागल हो गया।

2. विक्षिप्तता-

कारक भाव - प्रथम, चतुर्थ, पंचम।

कारक ग्रह - चन्द्रमा, बुध।

अविकसित मस्तिष्क का कारक ग्रह चन्द्रमा, उमंग का कारक भाव चतुर्थ, बुद्धि का कारक पंचम ग्रह बुध तथा प्रथम तथा पंचम भाव कारक भाव है।

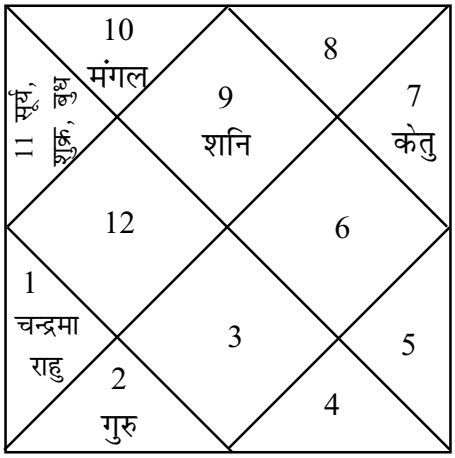

जब लग्नेश, चतुर्थेश और पंचमेश चन्द्रमा, बुध और प्रथम चतुर्थ, पंचम भाव पापग्रहों से पीड़ित होता है तो बुद्धि ज्ञान की ग्रन्थि प्रभावित होकर निष्क्रिय हो जाती है, जिससे जातक विक्षिप्त हो जाता है।

3. मानसिक रूप से असंतुलित-

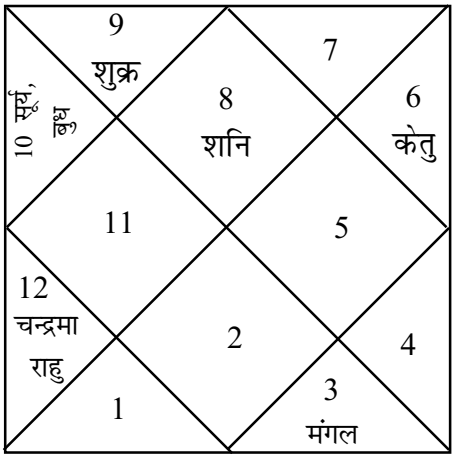

कारक भाव - प्रथम, अष्टम।

कारक ग्रह - लग्नेश, गुरु, बुध।

कभी कभी लग्नेश अष्टम भाव में शत्रुगृही होकर अति कमजोर रहता है। बुद्धि और ज्ञान के कारक ग्रह बुध तथा मानसिक दुर्बलता के कारक ग्रह चन्द्रमा तथ लग्नेश, राहु और शनि पापाक्रान्त होने पर बच्चों के मस्तिष्क को प्रभावित करता है जिससे मस्तिष्क का विकास नहीं हो पाता है। यदि थोड़ा बहुत होता भी है तो आयु के अनुसार नगण्य रहता है। जातक प्रारम्भ से ही मानसिक रूप से असंतुलित रहते हैं। मानसिक असन्तुलन की अन्य स्थतियाँ इस प्रकार हैं:-

1. शनि के नक्षत्र में स्थित चन्द्रमा मानसिक रोग पागलपन, उन्माद पैदा करता है।

2. यदि लग्न में नीचस्थ शनि पर सूर्य की दृष्टि हो।

3. यदि लग्न पर स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा का मंगल एवं शनि से दृष्टि अथवा युति हो।

4. यदि सप्तम भावस्थित नीच राशि के चन्द्रमा, शनि अथवा मंगल लग्न या लग्नेश से, सूर्य एवं चन्द्रमा से, दृष्ट अथवा युक्त रहे।

5. यदि सूर्य एवं चन्द्रमा पापग्रह से दृष्ट अथवा युक्त हो। राहु एवं केतु ग्रह से दृष्ट हो तथा तृतीय भाव में मंगल एवं गुरु हों या मंगल, गुरु, शनि की दृष्टि अथवा युति हो।

अस्थमा रोग-

अस्थमा रोग मुख्यत: श्वास रोग होता है। वराहमिहिर इस विषय में कहा है-

अन्तःशशिन्यशुभयोर्मृगगे पतङ्गे श्वासक्षयाप्लीहकविद्रधिगुल्मभाजः।

बृहज्जातक 2, अध्याय 23, श्लोक- 8

यदि चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के बीच में हो और मकर में सूर्य हो तो जातक श्वास रोग से ग्रसित होता है।

इस रोग के बारे में **जातक-पारिजात** में कहा गया हैं-

लग्ने रवौ भूमिसुतेन दृष्टे गुल्मक्षयश्वासनिपीडितः स्यात्।
भौमे विलग्ने शनिसूर्यदृष्टे वसूरिरोगाभिहतो मनुष्यः॥

जातकपारिजात, अध्याय जातकभंगाध्याय, श्लोक- 62

लग्नगत सूर्य यदि मंगल से दृष्ट हो तो गुल्म, टी.वी. या साँस रोग (दमा) होता है। **जातक-तत्त्व** में कहा गया है कि-

भौमार्क्यदृष्टिलग्ने श्वासक्षयादिः। जातकतत्त्व, षष्ठविवेक, श्लोक- 47

लग्न को यदि मंगल और शनि देखते हों तो जातक श्वासादि क्षयरोग से पीड़ित होता है।

अस्थमा रोग के मुख्य कारक ग्रह चन्द्रमा, बुध, शनि, राहु होते हैं। तथा कारक भाव चतुर्थ एवं नवम होते हैं तथा कारक राशि मिथुन, सिंह माने गये हैं।

श्वास-क्रिया का कारक ग्रह बुध और शीत-रक्त-प्रधान रोगों के कारक ग्रह चन्द्रमा हैं तथा मुख्य प्रभाव डालनेवाला ग्रह शनि एवं राहु है। चतुर्थ भाव, फेफड़ा हृदय का कारक भाव है। जब बुध और चन्द्रमा षष्ठ भाव या षष्ठेश के साथ हो तथा लग्नेश भी पाप ग्रहों- राहु, शनि, केतु, मंगल ग्रह के द्वारा पीड़ित हो तो कारक ग्रह की दशा में दमा की बीमारी उत्पन्न होती है। चन्द्रमा यदि मिथुन या सिंह राशि में चतुर्थ भाव में शनि या राहु द्वारा पापाक्रान्त होता है तो दमा की शिकायत होती है।

उदाहरण- प्रस्तुत कुण्डली भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की है इनका जन्म 3 दिसम्बर 1884 दिन बुधवार संवत् 1941 शाके 1806 पौष कृष्ण प्रतिपदा को दंडादि 5:14 पर छपरा में हुआ।

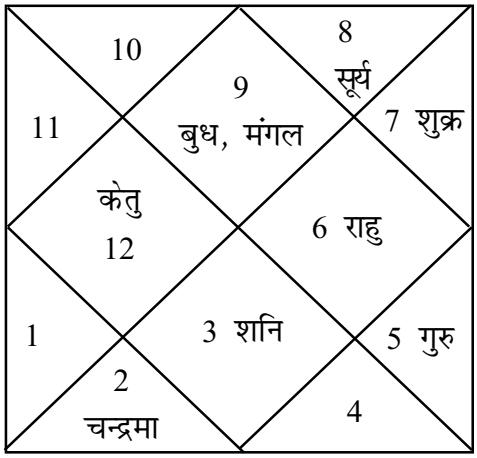

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आजीवन दमा के बीमारी से ग्रस्त थे चूंकि चतुर्थ भाग मंगल एवं शनि की दृष्टि से ग्रस्त है। चतुर्थ भाग फेफड़ा के कारक भाव है। चन्द्रमा पर राहु की दृष्टि पड़ रही है अतः चन्द्रमा रिपु भाव में पापाक्रान्त हैं। बुध मंगल से युक्त हैं तथा बुध पर शनि की दृष्टि पड़ रही है। अतः मंगल एवं शनि से बुध भी पापाक्रान्त है जो अस्थमा, दमा रोग का पूर्ण योग बनाता है, जिसके प्रभाव से डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आजीवन दमा रोग से ग्रस्त रहे।

उपाय- जो व्यक्ति मानसिक रोग एवं दमा रोग से ग्रस्त हों, वे जातक अपने-अपने जन्मलग्न के अनुसार ग्रहशन्ति करें।

1. रत्न धारण कर लग्नेश को बली करें। 2. चन्द्र-कवच का पाठ करें। 3.शिवसहस्रनाम पाठ करें। 4. चार मुखी रुद्राक्ष धरण करें। 5. जो पापग्रह से पीड़ित हों उसका जप, पाठ, दान, व्रत कर शान्ति करें। 6. हनुमान कवच एवं मृत्युंजय स्तोत्र पाठ करें। 7. पूर्णिमा तिथि में व्रत रखें तथा 11 किलो अरवा चावल पूर्णिमा के दिन दान करें।

गणित-फलित-ज्योतिषाचार्य, ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर पटना-1

पाठकीय प्रतिक्रिया

महावीर मन्दिर, पटना से प्रकाशित होनेवाली त्रैमासिक पत्रिका 'धर्मायण' धार्मिक पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान आयत्त करती है। सम्प्रति इसके प्रधान सम्पादक पं. भवनाथ झा हैं और सहायक सम्पादक हैं पं. सुरेशचन्द्र मिश्र। महावीर मन्दिर के अधिष्ठाता ख्यातयशा भक्तिमार्गी विद्वान् आचार्य किशोर कुणालजी, जो शास्त्रज्ञ प्रकाशकों में अपना अग्रमी स्थान आयत्त करते हैं, इस मासिक पत्रिका के प्रवर्तक हैं। यह पत्रिका पूरे भारतवर्ष में नैतिक और धार्मिक भावना के प्रचार-प्रसार में सारस्वत धर्मसंवाहक प्रतिनिधि की महनीय भूमिका का निर्वहण कर रही है। इस दृष्टि से यह प्रसिद्ध धार्मिक मासिक पत्रिका 'कल्याण' के समतुल्य है। इससे अनेक पाठकों को असंयत से संयत और अनैतिक से नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। और यही इस पत्रिका की ऐतिहातिक उपलब्धि है। धार्मिक पत्रकारिता-जगत् में महावीर मन्दिर, इसके पांक्तेय अधिष्ठाता आचार्य किशोर कुणाल एवं उनके द्वारा प्रवर्तित धर्मायण इन तीनों की त्रिवेणी कल्पान्तस्थायी रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

विद्यावाचस्पति श्रीरंजन सूरिदेव

पाठकों से निवेदन

'धर्मायण' के पाठकों से निवेदन है कि उन्हें यह पत्रिका कैसी लगी, वे इस पत्रिका में और क्या चाहते हैं यह हमें अवश्य लिखें। आपकी प्रतिक्रिया हमारे लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इससे हमें आगे अंकों की रूपरेखा के निर्धारण में सहायता मिलेगी। पाठकगण अपना मन्तव्य हमें डाक द्वारा अथवा महावीर मन्दिर के ईमेल mahavirmandir @gmail.com पर भेज सकते हैं।

अग्रिम अंक के आकर्षण

ज्योतिष की दृष्टि से नेत्ररोग के कारण एवं उपाय

वैखानस आगम में रामोपासना

धार्मिक-शंका-समाधान

महावीर मन्दिर के शोध एवं प्रकाशन विभाग में अनेक श्रद्धालु धर्म-सम्बन्धी समस्याएँ लेकर उसके शास्त्रीय समाधान के लिए आते रहते हैं जिनका यथासम्भव समाधान किया जाता है। इसे ध्यान में रखते हुए हमने इन्हें 'धर्मायण' में प्रकाशित करने की योजना बनायी है, ताकि इन सैद्धान्तिक तथ्यों को पढकर 'धर्मायण' के सभी पाठक लाभान्वित हो सकें। पाठकगण ऐसी समस्याएँ लिखित रूप से हमें ई-मेल अथवा डाक से भेज सकते हैं, जिनके समाधान धर्मायण के अगले अंक में प्रकाशित किये जायेंगे।

स्थायी-स्तम्भ

संस्कृत सीखें

(प्रथम पाठ)

अनेक पाठकों के अनुरोध पर 'धर्मायण' के इस स्थायी-स्तम्भ के अन्तर्गत हम संस्कृत भाषा सीखने के लिए कुछ पाठों का क्रमशः प्रकाशन कर रहे हैं। ऐसे व्यक्ति जो हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के अच्छे जानकार हैं, संस्कृत सीखने की अभिरुचि रखते हैं जिससे वे पुराणों तथा अन्य संस्कृत-ग्रन्थों की भाषा को समझ सकें, विना अनुवाद के भी मूल पढ़कर उनका अर्थ लगा सकें; ऐसे जिज्ञासुओं के लिए यहाँ आरम्भ से पाठ प्रकाशित किये जा रहे हैं। इनमें तत्काल जो पाठ दिये जाते हैं उन्हें हृदयंगम करें। कुछ ही दिनों में स्वयं अपना रास्ता बना लेने में सक्षम होते जायेंगे।।

संस्कृत में बनावट की दृष्टि से शब्द (पद) दो प्रकार के होते हैं- सुबन्त (सुप्+अन्त) एवं तिङन्त (तिङ्+अन्त)। तिङन्त शब्द क्रियापद होते हैं तथा उनसे भिन्न सभी शब्द सुबन्त कहलाते हैं। सर्वप्रथम हम सुबन्त शब्दों को जानने का यत्न करेंगे। सुबन्त शब्दों में दो भाग होते हैं प्रातिपदिक (मूलशब्द) एवं सुप् प्रत्यय। इन्हें विस्तार से जानने से पहले हमें कुछ शब्दों के रूप कण्ठस्थ करने पडेंगे।

शब्दरूपों को कण्ठस्थ करने के क्रम में पहली समस्या आती है कि कम से कम किन-किन शब्दों का रूप हमें अभ्यास कर लेना होगा जिससे हम अधिक से अधिक शब्दों के रूप समानता के आधार पर जान सकें। हमें जानना चाहिए कि शब्दों के रूप निम्नलिखित बातों पर निर्भर करते हैं।

1. वह संज्ञा शब्द है या सर्वनाम। 2. शब्द का अन्तिम वर्ण क्या है। 3. शब्द किस लिङ्ग में है।

इस प्रकार अकारान्त पुल्लिङ्ग संज्ञा शब्द जितने हैं सबके रूप एक समान होंगे। अतः यदि हम एक 'राम' शब्द का रूप अभ्यास कर लेते हैं तो बालक, देश, छात्र, हिमालय आदि एक प्रकार के सभी रूप स्वतः कण्ठस्थ हो जायेंगे।

इस प्रकार कण्ठस्थ करने के लिए शब्दों का चयन अति महत्त्वपूर्ण है। इस अंक में हम दश पुल्लिंग शब्दों के रूप दे रहे हैं, जिन्हें जिज्ञासु केवल कण्ठस्थ कर लें।

रामो हरिः करी भूभृद् भानुः कर्ता च चन्द्रमाः।
तस्थिवान् भगवानात्मा दशैते पुंसि नायकाः।।

अर्थात् राम, हरिन् (विष्णु), करिन्(हाथी), भूभृत्(राजा), भानुः(सूर्य), कर्ता(करनेवाला), चन्द्रमस्(चन्द्रमा), तस्थिवस् (खड़ा रहनेवाला), भगवान् (ईश्वर) एवं आत्मा (स्वयं, आत्मा) - ये दश शब्द पुल्लिंग शब्दों के नायक हैं। यदि इनके रूप हम कण्ठस्थ कर लेते हैं तो किसी भी पुल्लिंग संज्ञा शब्द में हमें कठिनाई नहीं होगी।

राम- रामः रामौ रामाः। रामं रामौ रामान्। रामेण रामाभ्यां रामैः। रामाय रामाभ्यां रामेभ्यः। रामात् रामाभ्यां रामेभ्यः। रामस्य रामयोः रामाणाम्। रामे रामयोः रामेषु। हे राम हे रामौ हे रामाः।।

हरिन्- हरिः हरी हरयः। हरिम् हरी हरीन्। हरिणा हरिभ्याम् हरिभिः। हरये हरिभ्याम् हरिभ्यः। हरेः हरिभ्याम् हरिभ्यः।हरेः हर्योः हरीणाम्। हरौ हर्योः हरिषु। हे हरे। हे हरी। हे हरयः।

करिन्- करी करिणौ करिण:। करिणम् करिणौ करिण:। करिणा करिभ्याम् करिभि:। करिणे करिभ्याम् करिभ्य:। करिण: करिभ्याम् करिभ्य:। करिण: करिणो: करिणाम्। करिणि करिणो: करिषु। हे करिन् हे करिणौ हे करिण:।।

भूभृत्- भूभृत् भूभृतौ भूभृत:। भूभृतम् भूभृतौ भूभृत:। भूभृता भूभृद्भ्याम् भूभृद्भि:। भूभृते भूभृद्भ्याम् भूभृद्भ्य:। भूभृत: भूभृद्भ्याम् भूभृद्भ्य:।भूभृत: भूभृतो: भूभृताम्। भूभृति भूभृतो: भूभृत्सु। हे भूभृत् हे भूभृतौ हे भूभृत:।।

भानु- भानु: भानू भानव:। भानुम् भानू भानून्। भानुना भानुभ्यां भानुभि:। भानवे भानुभ्यां भानुभ्य:। भानुन: भानुभ्यां भानुभ्य:। भानो: भान्वो: भानूनाम्। भानौ भान्वो: भानुषु। हे भानो हे भानू हे भानव:।।

कर्तृ- कर्ता कर्तारौ कर्तार:। कर्तारं कर्तारौ कर्तॄन्। कर्त्रा कर्तृभ्यां कर्तृभि:। कर्त्रे कर्तृभ्यां कर्तृभ्य:। कर्तु: कर्तृभ्यां कर्तृभ्य:। कर्तु: कर्त्रो: कर्तॄणाम्। कर्तरि कर्त्रो: कर्तृसु। हे कर्ता हे कर्तारौ हे कर्तार:।।

चन्द्रमस्- चन्द्रमा: चन्द्रमसौ चन्द्रमस:। चन्द्रमसं चन्द्रमसौ चन्द्रमस:। चन्द्रमसा चन्द्रमोभ्यां चन्द्रमोभि:। चन्द्रमसे चन्द्रमोभ्यां चन्द्रमोभ्य:। चन्द्रमस: चन्द्रमोभ्यां चन्द्रमोभ्य:। चन्द्रमस: चन्द्रमसो: चन्द्रमसाम्। चन्द्रमसि चन्द्रमसो: चन्द्रमस्सु। हे चन्द्रम: हे चन्द्रमसौ हे चन्द्रमस:।।

तस्थिवत्- तस्थिवान् तस्थिवांसौ तस्थिवांस:। तस्थिवांसम् तस्थिवांसौ तस्थुष:। तस्थुषा तस्थिवद्भ्याम् तस्थिवद्भि:। तस्थुषे तस्थिवद्भ्याम् तस्थिवद्भ्य:। तस्थुष: तस्थिवद्भ्याम् तस्थिवद्भ्य:। तस्थुष: तस्थुषो: तस्थुषाम्। तस्थुषि तस्थुषो: तस्थिवत्सु। हे तस्थिवन् हे तस्थिवांसौ हे तस्थिवांस: ।

भगवत्- भगवान् भगवन्तौ भगवन्त:। भगवन्तम् भगवन्तौ भगवत:। भगवता भगवद्भ्याम् भगवद्भि:। भगवते भगवद्भ्याम् भगवद्भ्य:। भगवत: भगवद्भ्याम् भगवद्भ्य:। भगवत: भगवतो: भगवताम्। भगवति भगवतो: भगवत्सु। हे भगवन् हे भगवन्तौ हे भगवन्त: । ।

आत्मन्- आत्मा आत्मानौ आत्मान:। आत्मानम् आत्मानौ आत्मन:। आत्मना आत्मभ्याम् आत्मभि:। आत्मने आत्मभ्याम् आत्मभ्य:। आत्मन: आत्मभ्याम् आत्मभ्य:। आत्मन: आत्मनो: आत्मनाम्। आत्मनि आत्मनो: आत्मसु। हे आत्मन् हे आत्मानौ हे आत्मान:।

इन दशों शब्दों का रूप विना कुछ विचारे कण्ठस्थ करें। कण्ठस्थ करने से पहले विभक्ति एवं वचन के विचार में उलझना व्यावहारिक नहीं होगा। अगले अंक में 10 स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप दिये जायेंगे।

– भवनाथ झा

जैन बोधकथा

पूर्वभव[१] की परभव[२] में प्रतिक्रिया

साहित्यवाचस्पति डा. श्रीरंजन सूरिदेव

कंचनपुर के दो वणिक् रत्न अर्जित करने के निमित्त एक साथ लंकाद्वीप गये। रत्न अर्जित करके वे दोनों प्रच्छन्न भाव से सन्ध्या में कंचनपुर लौटे। कुवेला में कहीं कोई रत्न छीन न ले, इसलिए उन्होंने उसे कँटरेंगनी के झाड़ के नीचे गाड़ दिया और रात में वे दोनों अपने-अपने घर चले गये।

सुबह होने पर उन दोनों में एक वणिक् कँटरेंगनी के नीचे छिपाये हुए हुए रत्न को चुपके से निकाल कर ले गये।उसके बाद यथानिश्चित समय पर दोनों वणिक् साथ आये और रत्न को न देखकर एक दूसरे पर शंका करते हुए आपस में हाथापाई करने लगे। फिर, गुस्से में आकर दाँतों से एक दूसरे को काटने लगे और पत्थर फेंक-फेंक कर आपस में लड़ते हुए मर गये।

मरने के बाद दु:खबहुल एक गति से दूसरी गति में जाकर जंगली भैंसे हो गये और फिर परस्पर सींगों से प्रहार करते हुए मरकर बैल के रूप में उत्पन्न हुए।

पुन: दोनों आपस में लड़ते हुए मर गये और कालंजर पर्वत पर वानरों के यूथपति के रूप में पैदा हुए। वहाँ भी जन्मान्तर के वैर का स्मरण करते हुए दोनों लड़ने लगे और खून से लथपथ होकर जमीन पर गिर पड़े।

सहसा विद्युत्सम्पात की तरह चारण श्रमण वहाँ अवतीर्ण हुए। उन्होंने वानर-यूथपतियों को वैसी अवस्था में देख उन्हें समझाया कि तुम दोनों ने क्रोध के अधीन होकर व्यर्थ ही तिर्यक् योनियों का भोग करते हुए बार-बार मृत्यु को प्राप्त किया। इसलिए, वैर का अनुबन्ध छोड़ो। नारकीय तिर्यक् योनि और कुमनुष्यों के भव में क्लेश पाने की अपेक्षा शान्त हो जाओ और जिन-वचन के ग्रहण के साथ प्रवज्या धारण करो, तभी सुगति प्राप्त होगी।

अन्त में दोनों ने मुनिव्रत स्वीकार कर, व्रत का पालन करते हुए सौधर्म स्वर्ग में देवत्व को प्राप्त किया।

पुन: उनमें से एक देवलोक से च्युत होकर मनुष्य शरीर प्राप्त करके गुरु के समीप 'जिन'-वचन सुनकर श्रमण हो गया और दूसरा वानरपति कर्मनाश की अनिच्छा से बुभुक्षा आदि परिषहों[३] को सहता हुआ ज्योतिष्क देवता हो गया। कर्मनाश की अनिच्छा की स्थिति में भवान्तर-प्राप्ति और कर्मनाश की इच्छा से भवमुक्ति - इस दार्शनिक रूढि का प्रतिफलन इस रूढकथा में हुआ है और पूर्वभव के वैरानुबन्ध की स्मृति से परभव में होनेवाली दुष्परिणिति भी स्पष्ट है।

---

१. पूर्वजन्म, २. अगला जन्म

१. **परिषह** - मार्ग से च्युत न होने के लिए और कर्मो की निर्जरा के लिए जो सहन करने योग्य बाधाएँ हैं। ये 22 प्रकार की होती हैं- क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंश-मशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, शया, निषद्य, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, अदर्शन, रोग, तृणस्पर्श, प्रज्ञा, अज्ञान, मल और सत्कार-पुरस्कार।

बौद्ध बोधकथा

चिकित्सक के दर्शन कर लेने से रोग नहीं छूटते

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के समय उनके शिष्य जब फूट-पूटकर रोने लगे तब भगवान् ने उन्हें समझाते हुए धर्म के मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। इसी क्रम में शिष्यों ने पूछा कि हे गुरु, आपके निर्वाण के बाद तो हम अनाथ हो जायेंगे, फिर हमें धर्म कौन बतलायेगा। इस पर भगवान् ने अपने शिष्यों को समझाते हुए कहा कि कठिन परिश्रम कर जब तक हम अपने लक्ष्य को पा नहीं लेते हैं तबतक मेरे दर्शन मात्र कर लेने से मुक्ति नहीं मिलेगी। जो मेरे धर्म के रास्ते को जानकर उसपर चलते हैं वे सभी प्रकार के दु:खों से मुक्त हो जाते हैं।

जिस प्रकार चिकित्सक का दर्शन भर कर लेने से रोगों से छुटकारा नहीं मिलता है उसी प्रकार मेरे दर्शन करने से कुछ नहीं होगा। किन्तु जिस प्रकार चिकित्सक द्वारा बतायी गयी औषधि के नियमानुसार सेवन से, उनके द्वारा बताये गये पथ्य करने से रोग से मुक्ति मिलती है उसी प्रकार मेरे द्वारा बताये धर्म के रास्ते पर चलने से मुक्ति मिलेगी और सभी दु:खों से छुटकारा मिल जायेगा।

जो अपने चित्त को वश में कर धर्म के मार्ग को देखकर धर्म उस पर चलते हैं वे दूर रहने पर भी मुझे अपने निकट पाते हैं। लेकिन जो मन्दबुद्धि उस धर्म पर तत्पर हीं रहता है उसके पास भी यदि मैं रहूँ तो वह मुझे दूर में हीं अवस्थित मानेगा।

इसलिए आलस्य को छोडकर अपने चित्त को वश में कर अपनी शक्ति से कल्याण के लिए भलीभाँति यत्न करो। इस संसार में दु:ख से पीड़ित जीवन उसी प्रकार चंचल है, जिस प्रकार नदी में कागज की नाव पर जलता हुआ एक दीप हो, और वहाँ चारों ओर आँधी बह रही हो। ऐसी स्थिति में पता नहीं, वह कागज की नाव कब डूब जाये और नन्हा-सा दीया कब नदी की धारा में समा जाये।

-महाकवि अश्वघोष (पहली शती) द्वारा रचित **बुद्धचरितम्** के पचीसवें सर्ग से

-भवनाथ झा

योग की परिभाषा

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

(भागते रहनेवाले मन को नियन्त्रित करना योग है।)

'युजिर् योगे' धातु से बने योग शब्द का अर्थ जोड़नेवाला होता है। इस अर्थ में ब्रह्म के साथ संयोग, मन, वचन एवं कर्म के साथ संयोग, कठिनता से पाने योग्य किसी वस्तु के साथ संयोग, आदि अनेक अर्थों में 'योग' शब्द का व्यवहार सनातन धर्म में हुआ है। सनातन धर्म में पूर्ण आनन्द स्वरूप ब्रह्म के साथ संयोग, जिसे मोक्ष कहा गया है, उसे पाने के लिए जिस मार्ग का विवेचन हुआ है, वह योग है। इस प्रकार योग एक स्थापित मार्ग है, एक पद्धति है, जिसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। गीता में कर्मयोग ज्ञानयोग एवं भक्तियोग का विवेचन इन्हीं मार्गों के रूप में हुआ है।

पतञ्जलि का योग-दर्शन भी उसी परम तत्त्व ब्रह्म के साथ संयोग कराने का शास्त्र है, जिसमें मन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को संयमित करने का उपदेश किया गया है और इसके लिए आठ अंग बतलाये गये हैं- **यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा एवं समाधि**। पातञ्जल योग में इस क्रम का विशेष महत्त्व है। इन आठ अंगों को हम आठ सीढ़ियाँ मानें तो इसकी वैज्ञानिकता समझ में आयेगी।

यह समझना चाहिए कि विना यम एवं नियम का पालन किये हुए हम आगे नहीं बढ़ सकते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच आदि का पालन किये विना हम यदि योग की चर्चा करते हैं तो इससे भले हम शरीर के कुछ रोगों को आधा-अधूरा ठीक कर लेने का दाबा करें पर ब्रह्म के साथ संयोग की सीढ़ी पर नहीं चढ़ सकते हैं।

योग के आठ अंगों में यम एवं नियम ये दोनों स्तर लौकिक हैं, मनुष्य के वश की चीज है, अतः ये आचार हैं, और इनके पालन करने के बाद ही हम आसन, प्राणायाम एवं उसके आगे के स्तर के अधिकारी होते हैं। मनु ने धर्म के जो दस लक्षण धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्ध, विद्या, सत्य एवं क्रोध नहीं करना बतलाया है इन दसों का समायोजन पतञ्जलि ने यम एवं नियम के अन्तर्गत किया है। इनका पालन करने पर व्यक्ति धर्म के शून्य-स्तर को प्राप्त करता है जिसे पाने के बाद ही कोई व्यक्ति आगे एक ओर पूजा, यज्ञ आदि उपासना का अधिकार पाता है तो दूसरी ओर योग-मार्ग में आगे बढ़ने का अधिकारी होता है। धर्म के इस शून्य-स्तर को समझना आज सबसे आवश्यक है। योग के सन्दर्भ में यह भी ध्यान देना चाहिए कि पतञ्जलि ने आसन की परिभाषा भर दी है और उसके भेदों और स्वरूपों का विवेचन आगम एवं तन्त्र की परम्परा में हुआ है, जिनमें गोरखनाथ, घेरण्ड आदि की परम्परा महत्त्वपूर्ण एवं मुखर है।

भवनाथ झा

मन्दिर समाचार-परिक्रमा

महावीर मन्दिर में सन्त रविदास-जयन्ती पर मुख्यमन्त्री का शुभागमन

आज दिनांक 03.02.2015 दिन- मंगलवार को प्रातः 11:25 बजे, महावीर मन्दिर पटना जंक्शन के तत्त्वावधान में, मन्दिर के विशाल प्रांगण में, भक्त शिरोमणि, **सन्त रविदास जयन्ती का भव्य आयोज** किया गया। जिसमें, मुख्य अतिथि के रूप में, प्रदेश के **मुख्यमंत्री माननीय श्री जीतन राम मांझी** जी का शुभागमन हुआ। आगमनोपरान्त मुख्य अतिथि ने सर्वप्रथम सन्त रविदासजी की प्रतिमा पर शुभ माल्यार्पण किया। तदुपरान्त मन्दिर के गर्भगृह में जाकर श्री राम भक्त प्रवर हनुमानजी का पावन दर्शन किया। तत्पश्चात् मन्दिर के ऊपरी तल्ले पर स्थापित अन्य पूज्य देवी-देवताओं के पास जाकर प्रणत-भाव अपनी असीम श्रद्धा का निवेदन किया।

मन्दिर में भक्तों एवं अन्य भाषण श्रवण कर्त्ताओं की अपार भीड़ अपने माननीय मुख्यमन्त्रीजी का भाषण सुनने के लिए शान्त बैठी थी। मुख्यमंत्री जी ने 11:30 बजे मंच पर आकर अपना स्थान ग्रहण किया।

सर्वप्रथम श्री महावीर स्थान न्यास समिति के सचिव, आचार्य श्री किशोर कुणाल ने स्वागत भाषण किया एवं सन्त रविदास तथा रामावत संगत की महनीय गरिमा पर अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से प्रकाश डाला। श्री राम सुन्दर दास, पूर्व मुख्यमंत्री बिहार का उद्‌बोधन भाषण हुआ। श्री दास ने मुख्यमंत्री के आगन पर अपनी अपार खुशियाँ जताते हुए अपने सार गर्मित भाषण से सभी श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट किया। जमीन से जुड़े जमीनी मुख्यमंत्री जी ने अपने ओजस्वी भाषण देते हुए सन्त रविदास के आदर्शों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा - **''रविदास सच्चे संत थे, जिनके दिमाग में केवल भक्ति-ही-भक्ति थी। ऊँच-नीच का भेद भाव हमें भक्ति से विचलित करता है। हमें आपसी भेद-भाव को भूलकर सम्पूर्ण मानवता की सेवा में ही ध्यान देना चाहिए। ईश्वर की नजर में सब समान है।''** अपने भाषण-क्रम में इन्होंने दर्शकों से कई बार तालियाँ बटोरीं। अन्त में, श्री जिया लाल आर्य जी ने आगत अतिथियों का साभार धन्यवाद ज्ञापन किया। करबिगहिया से सन्त रविदास जी की जयन्ती पर एक शोभा-यात्रा मन्दिर के मुख्य द्वारा के पास आकर खड़ी थी, जिसका मुख्यमंत्री जी ने श्रद्धापूर्वक झंडा दिखाकर श्री गणेश किया।

महावीर मन्दिर में विभिन्न पूजन मदों में निर्धारित शुल्क

देव-समर्पण

निम्नलिखित देव-समर्पण के लिए **यजमान की सदेह उपस्थिति आवश्यक नहीं** है। वे बाहर रहते हुए भी इनके लिए शुल्क जमा करा सकते हैं। दूर में रहनेवाले श्रद्धालु श्री महावीर स्थान न्यास समिति के नाम ऑनलाइन खाता सं. 31911260294 IFS CODE- SBIN0004070, SWIFT CODE SBININBB391, BRANCH CODE - 4070, SPECIALISED P.B. BRANCH, PATNA. के नाम से शुल्क भेजकर शुल्क का विवरण, देव-समर्पण की तिथि आदि mahavirmandir@gmail.com पर ईमेल से भेज सकते हैं। उन्हें रसीद की प्रति ईमेल से भेज दी जाती है। स्थानीय श्रद्धालु मन्दिर के काउन्टर पर अपना नाम अंकित करा सकते हैं। श्रद्धालुओं का नाम मन्दिर में हनुमानजी के सामने रखे गये बोर्ड पर अंकित रहेगा।

(१) **भगवान् का भोग** (शुल्क- 501.00, मंगलवार- 1101.00, शनिवार- 751.00, रामनवमी- 5500

मन्दिर में प्रतिदिन मध्याह्न आरती एवं सन्ध्या आरती से पहले सभी देवताओं को अन्न-भोग अर्पित किया जाता है। भक्तों द्वारा जमा किये गये शुल्क से इसकी व्यवस्था की जाती है तथा स्थानीय भक्त इसका प्रसाद ग्रहण करते हैं।

(२) **ध्वजारोपण** प्रत्येक पूर्णिमा एवं मंगलवार को (शुल्क- 1500.00)

(३) **अखण्ड-ज्योति** (शुल्क- 251.00, मंगलवार- 501.00, शनिवार- 351.00)

मुख्य देवता हनुमानजी के गर्भगृह में घी का अखण्ड दीप जलता है। जो भक्त इसके लिए शुल्क जमा करते हैं उनके नाम से संकल्प लेकर इसी दीप में घी डाला जाता है।

(४) **सिन्दूर शृंगार** (शुल्क- 251.00, मंगलवार- 501.00, शनिवार- 351.00)

हनुमान् की प्रतिमा पर प्रतिदिन सिन्दूर-लेपन का विधान है। जो भक्त इसके लिए शुल्क जमा करते हैं उनके नाम से संकल्प कर यह सिन्दूर-शृंगार किया जाता है।

(५) **साधु सेवा** (शुल्क- 501.00)

भक्तों द्वारा जमा किए गये शुल्क से मन्दिर में साधुओं के लिए दो समय भोजन की नियमित व्यवस्था है लगभग 100 साधु-संन्यासी, महात्मा प्रतिदिन भोजन करते हैं।

(६) **दरिद्रनारायण भोज** (शुल्क- 501.00, मंगलवार- 1001.00, शनिवार- 751.00)

(७) **विशेष दरिद्रनारायण भोज** (न्यूनतम शुल्क- 2100.00)

भक्तों द्वारा दिये गये धन से मन्दिर द्वारा एकबार अपराह्ण 4 बजे जरूरतमंदों को भोजन कराया जाता है। स्थानीय श्रद्धालु उस समय आकर अपने हाथों भी भोजन परोस कर खिलाते हैं।

(८) **कैंसर मरीज के लिए भोजन** (न्यूनतम शुल्क- 2500.00)

महावीर मन्दिर से भोजन बनाकर प्रत्येक शनिवार को महावीर कैंसर संस्थान में भेजा जाता है। इस पुनीत कार्य में श्रद्धालुओं का योगदान स्वीकार्य है।

सभी दाताओं के नाम मन्दिर में रखे गये दैनिक बोर्ड पर लिखे जाते हैं।

वैदिक-कर्मकाण्ड

वैदिक कर्मकाण्डों के लिए पहले से शुल्क जमाकर समय एवं दिन निश्चित कर लिया जाता है। इसी शुल्क में पुरोहित की दक्षिणा भी सम्मिलित है। पूजा करानेवाले को अपने साथ कुछ भी लाने की आवश्यकता नहीं है। पूजा के दिन यजमान की सदेह उपस्थिति अनिवार्य है। यदि यजमान स्वयं उपस्थित होने में असमर्थ हैं तो उनके निकटतम रक्त संबंधी (पति, पत्नी, माता, पिता, सोदर भाई, बहन आदि) आकर पूजा संपन्न कर सकते हैं।

(१) **मनोकामना बृहद् यज्ञ** (शुल्क- 5001.00)

किसी एक विशेष कामना की पूर्ति के लिए आराध्य देव श्रीराम एवं हनुमान की विस्तृत पूजा एवं वैदिक विधि से विशेष हवन की व्यवस्था की गयी है। इसमें लगभग 3 घंटे लगते हैं।

(२) **बृहद्-हनुमत्-पूजन** (शुल्क- 1001.00)

खोयी हुई वस्तु पाने के लिए, शत्रु के प्रकोप से बचने के लिए, मंगल एवं शनि ग्रह की शान्ति के लिए, कलह से मुक्ति, सुख-शान्ति एवं समृद्धि के लिए महावीर हनुमान् की उपासना सदियों से की जाती रही है। यह पूजा लगभग 2:30 घंटे तक चलती है। पूजन के अन्त में हवन भी होता है।

(३) **रुद्राभिषेक** (शुल्क- 751.00, (क) विशेष दिन ऊपरी मंजिल- 1501.00(सूची संलग्न), (ख) ऊपरी मंजिल श्रावण में प्रत्येक दिन 1001.00 (ग) प्रत्येक सोमवार एवं चतुर्दशी तिथि 1001.00)

रोग, मृत्युभय, बाधा, चिन्ता, कालसर्प योग, दुष्ट ग्रह आदि से छुटकारा पाने के लिए तथा पारिवारिक सुख शान्ति, समृद्धि, स्वास्थ्य आदि लाभ के लिए भगवान् शिव का अभिषेक सबसे प्रसिद्ध कर्मकाण्ड माना जाता है। स्थापित शिवलिंग पर अभिषेक में शिववास का भी विचार नहीं होता है। शिव की पूजा के लिए शिववास का विचार उस स्थिति में किया जाता है, जब मिट्टी का शिवलिंग बनाकर पूजा करनी हो। किन्तु मन्दिर में स्थापित प्रस्तर शिवलिंग पर किसी भी दिन रुद्राभिषेक कराया जा सकता है। महावीर मन्दिर में भक्तों द्वारा जमा किए गये शुल्क से 3 लीटर दूध एवं भोग की विशेष व्यवस्था की जाती है। पूजन की अन्य सामग्री तथा पुरोहित की दक्षिणा भी इसी में सम्मिलित है। यजमान को कुछ भी लाने की आवश्यकता नहीं है।

(४) **रामार्चा** (शुल्क- 1001.00)

भगवान् श्रीराम एवं जगज्जननी की उपासना महावीर मन्दिर में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य की लिखी हुई पद्धति से करायी जाती है। इसमें मन्दिर की ओर से नैवेद्यम् प्रसाद की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त प्रसाद यजमान स्वयं ला सकते हैं।

(५) **सत्यनारायण कथा** (शुल्क- 51.00)

ऐसे श्रद्धालु जो स्वयं सामग्री एवं पुरोहित की व्यवस्था करते हैं, उन्हें मन्दिर के ऊपरी तल पर पूजा का स्थान उपलब्ध कराया जाता है। यहाँ कुछ पुरोहित उपलब्ध रहते हैं तथा पूजा की चौकियाँ भी रखी रहती हैं।

(६) **बृहत्-सत्यनारायण कथा** (शुल्क- 501.00)

भगवान् सत्यनारायण की कथा घर-घर में होती रही है। महावीर मन्दिर में इस पूजा के लिए विशेष व्यवस्था की गयी है। इसमें लगभग 2 घंटे लगते हैं। यहाँ भविष्य-पुराण में उपलब्ध सत्यनारायण की विशिष्ट पूजा की व्यवस्था की गयी है।

(७) **जन्ममंगलानुष्ठान** (शुल्क- 251.00)

जन्मदिन के अवसर पर आयु-वृद्धि तथा अगले वर्ष में सुख, शान्ति, स्वास्थ्य एवं समृद्धि के लिए देवताओं की पूजा तथा हवन का विधान शास्त्रों में किया गया है। महावीर मन्दिर की ओर से इसकी व्यवस्था की गयी है। इसे वर्षवृद्धि या वर्द्धापन भी कहा जाता है।

(८) **ग्रहशान्ति हवन** (शुल्क- 501.00)

किसी व्यक्ति की जन्म कुण्डली में या गोचर में स्थित बुरे ग्रह की शान्ति के लिए उस ग्रह की विशेष पूजा की व्यवस्था की गयी है। इस पूजा में सभी ग्रहों की पूजा कर विशेष रूप से कष्टकारक ग्रह की विशेष पूजा तथा हवन किया जाता है। इसमें भी लगभग 1:30 घंटा समय लगता है।

(९) **रोगशान्ति हवन** (शुल्क- 501.00)

मान्यता के अनुसार दुष्ट ग्रह, पूर्व जन्म या इस जन्म में किया गया जाना या अनजाना कोई पाप रोग उत्पन्न करते हैं। इससे छुटकारा पाने के लिए भगवान् सूर्य एवं भगवान् शिव की आराधना सबसे उत्तम है। मन्दिर में इसके लिए व्यवस्था की गयी है। इस पूजा में भी लगभग 1:30 घंटे लगते हैं।

(१०) **विशेष हवन** (शुल्क- 251.00)

इसके अतिरिक्त यजमान अपनी इच्छानुसार विशेष परिस्थिति के लिए ग्रहों, देवताओं तथा विभिन्न वैदिक मार्ग द्वारा अनुमोदित हवन करा सकते हैं।

(११) **गणपति-पूजन** (शुल्क- 251.00)

भगवान् गणेश विघ्न नाश करनेवाले तथा हर तरह से सुमंगल करनेवाले देवता हैं। विद्या की प्राप्ति, प्रारम्भ किए गये कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए इनकी पूजा प्राचीन काल से की जाती है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का गणपति-खण्ड इनकी उपासना के लिए प्रसिद्ध है। इसी गणपति-खण्ड के आधार पर महावीर मन्दिर में पूजा-पद्धति तैयार की गयी है। इस पूजन में लगभग 2 घंटे लगते हैं।

(१२) **श्रीकृष्ण-पूजन** (शुल्क- 251.00)

महाभारत के अन्तर्गत हरिवंश में विशेष रूप से सन्तान-प्राप्ति के लिए श्रीकृष्ण की पूजा का विधान किया है। मन्दिर में इस पूजा की व्यवस्था की गयी है।

(१३) **मुण्डन** (शुल्क- 51.00)

बहुतों की मन्नतें रहती हैं कि वे मन्दिर में बच्चे का मुण्डन-संस्कार कराएँ। महावीर मन्दिर में भी निर्धारित शुल्क जमा कर तुलसी-मण्डप के पीछे बच्चे का मुण्डन करा सकते हैं। इसके लिए नाई, पुरोहित आदि की व्यवस्था स्वयं करनी होगी।

(१४) **वाहन पूजन-** कार-जीप आदि- 251.00 (विशेष शुल्क : धनतेरस- 501.00, विश्वकर्मा पूजा- 351.00)
मोटरसाइकिल, स्कूटर- 101.00 (विशेष शुल्क : धनतेरस- 251.00, विश्वकर्मा पूजा- 151.00)
साइकिल आदि- 25.00

नई खरीदी गयी गाड़ियों के लिए तथा विश्वकर्मा-पूजा (18 सितम्बर) के दिन पुरानी गाड़ियों के लिए भी वाहन-पूजा की व्यवस्था है। इसमें फूल-माला एवं प्रसाद खरीदकर यजमान स्वयं हनुमानजी का भोग लगाते हैं तथा मन्दिर की ओर से निर्धारित पुजारी वाहन-पूजा कर सुन्दर भविष्य की शुभकामना करते हैं।

जप एवं पाठ

(१) महामृत्युञ्जय जप (शुल्क- 225.00 प्रति हजार)

रोग, विघ्न-बाधा, मृत्यु की आशंका आदि के लिए मृत्यु को भी जीतने वाले महामन्त्र का जप प्राचीन काल से होता रहा है। वैदिक महामृत्युञ्जय मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
ऊर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा मृतात्।

यही मूलमन्त्र है। इस मन्त्र का 1 लाख 25 हजार जप करने या कराने का विधान है।

महावीर मन्दिर में योग्य साधक एवं पण्डित द्वारा यह जप कराने की व्यवस्था की गयी है। इसमें शुल्क जमा करने पर संकल्प लेने की तिथि निर्धारित की जाती है तथा उस दिन यजमान को स्वयं या अन्य किसी निकटतम व्यक्ति आकर संकल्प करते हैं और उसी दिन से जप आरम्भ हो जाता है। प्रत्येक 10,000 जप सम्पन्न होने पर उसका दशांश 1,000 मन्त्र से हवन होता है। इस हवन में यजमान अथवा किसी प्रतिनिधि की उपस्थिति अनिवार्य है। शुल्क जमा करने की न्यूनतम ईकाई 2,475.00 रुपया है जिसमें 10,000 जप एवं 1,000 हवन, कुल 11,000 जप-संख्या सम्मिलित है।

(२) अन्य ग्रह-मन्त्र जप (शुल्क- 225.00 प्रति हजार)

नौ ग्रहों के लिए वैदिक मन्त्रों के जप का विधान शास्त्रों में किया गया है। जन्म-कुण्डली या हस्तरेखा देखने पर ज्योतिषी यह निर्धारित करते हैं कि किस व्यक्ति को किस ग्रह का मन्त्र कितनी संख्या में जप कराना चाहिए। इस जप के लिए भी मन्दिर में महामृत्युंजय जप की तरह व्यवस्था है।

नोट - ग्रहों के तान्त्रिक मन्त्र के जप के लिए यहाँ कोई व्यवस्था नहीं है।

(३) सन्तान गोपाल-मन्त्र जप (शुल्क- 225.00 प्रति हजार)

हरिवंश पुराण के अन्तर्गत 100 श्लोकों का सन्तान गोपाल स्तोत्र प्रसिद्ध है। इस स्तोत्र का पाठ एवं पुरश्चरण सन्तान-प्राप्ति एवं सन्तान की रक्षा के लिए प्राचीन काल से होता रहा है।

(४) सुन्दरकाण्ड (रामचरितमानस) पाठ (शुल्क- 101.00 प्रति पाठ)

खोये हुए व्यक्ति या किसी वस्तु को पुनः पाने के लिए सुन्दरकाण्ड का पाठ होता रहा है। इससे हनुमानजी की आराधना की जाती है।

(५) सुन्दरकाण्ड (वाल्मीकि-रामायण) पाठ (शुल्क- 1800.00 प्रति पाठ)

वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड में 68 अध्याय हैं। इसके पाठ का कई प्रकार से पुरश्चरण होता है। महावीर मन्दिर में तीन दिन एवं सात दिन के दो प्रकार से पाठ होता है। इसमें हवन नहीं होता है।

(६) श्रीदुर्गासप्तशती सामान्य पाठ (शुल्क- 251.00 प्रति पाठ)

देवी की उपासना में यह पाठ सबसे प्रसिद्ध है। इस पाठ के अन्तर्गत अर्गला, कील, कवच, शापोद्धार, शतनाम, मूल 13 अध्याय एवं अन्त में ऋग्वेद के देवी-सूक्त का पाठ होता है। इसमें लगभग ढाई घंटा का समय लगता है।

(७) श्रीदुर्गासप्तशती सम्पुट पाठ (शुल्क- 751.00 प्रति पाठ)

श्रीदुर्गासप्तशती में सात सौ मन्त्र हैं। इनमें से कुछ मन्त्र सम्पुट पाठ के लिए प्रसिद्ध हैं। विभिन्न कामनाओं की सिद्धि के लिए विभिन्न बीज मन्त्रों का विधान किया गया है। सम्पुट पाठ में 13 अध्याय के सात सौ मन्त्रों में प्रत्येक मन्त्र के आगे-पीछे बीजमन्त्र जोड़कर पाठ किया जाता है। इस प्रकार एक सामान्य पाठ से तीन गुना समय इस सम्पुट पाठ में लगता है। यह पाठ विशेष फलदायी माना गया है।

❖

सन् 2015 ई०								
विशिष्ट-पर्व-तालिका								
पर्व	दिनांक	दिन	दरिद्रनारायण भोज		राजभोग	सिन्दूर शृंगार	अखण्ड ज्योति	रुद्राभिषेक
सामान्य दिन			501	2100	501	151	251	751
प्रत्येक शनिवार			751	2100	751	251	351	–
प्रत्येक मंगलवार			1001	2100	1101	351	501	–
नववर्ष	01-01-2015	गुरुवार	1001	2100	1101	351	501	1501
मकर संक्रान्ति	15-01-2015	गुरुवार	1001	2100	1101	351	501	
नरकनिवारण चतुर्दशी	19-01-2015	सोमवार						1501
वसन्तपंचमी	25-01-2015	रविवार	1001	2100	1101	351	501	
महाशिवरात्रि	17-02-2015	मंगलवार	1001	2100	1101	351	501	1501
होलिकोत्सव	6-03-2015	शुक्रवार	1001	2100	1101	351	501	
वासन्तीनवरात्रारम्भ	21-03-2015	शनिवार	1001	2100	1101	351	501	1501
रामनवमी	28-03-2015	शनिवार	1001	2100	5600	351	501	
मेष-संक्रान्ति (वैशाखी)	14-04-2015	मंगलवार	1001	2100	1101	351	501	
अक्षय तृतीया	21-04-2015	मंगलवार	1001	2100	1101	351	501	1501
जानकी नवमी	27-05-2015	सोमवार	1001	2100	1101	351	501	
गंगा दशहरा	28-05-2015	गुरुवार	1001	2100	1101	351	501	1501
गुरु पूर्णिमा	31-07-2015	शुक्रवार	1001	2100	1101	351	501	
श्रावणी प्रथम	03-08-2015	सोमवार	1001	2100				1501
श्रावणी द्वितीय	10-08-2015	सोमवार	1001	2100				1501
श्रावणी तृतीय	17-08-2015	सोमवार	1001	2100				1501
नाग पंचमी	19-08-2015	बुधवार	1001	2100	1101	351	501	1501
श्रावणी चतुर्थ	28-08-2015	सोमवार	1001	2100	1101	351	501	1501
रक्षाबंधन / संस्कृत दिवस	29-08-2015	शनिवार	1001	2100	1101	351	501	1501
कृष्णाष्टमी	05-09-2015	शनिवार	1001	2100	1101	351	501	
अनन्त चतुर्दशी	27-09-2015	रविवार	1001	2100	1101	351	501	
महालया / पितृविसर्जन / सौभवतीअमावस्या	12-10-2015	सोमवार	1001	2100				
शारदीय नवरात्रारम्भ	13-10-2015	मंगलवार	1001	2100	1101	351	501	1501
महाष्टमी	21-10-2015	बुधवार	1001	2100	1101	351	501	1501
महानवमी (दुर्गानवमी)	22-10-2015	गुरुवार	1001	2100	1101	351	501	1501
विजया दशमी	22-10-2015	गुरुवार	1001	2100	1101	351	501	
शरत् पूर्णिमा	26-10-2015	सोमवार	1001	2100	1101	351	501	
हनुमज्जयन्ती	10-11-2015	मंगलवार	1001	2100	1101	351	501	1501
दीपावली	11-11-2015	बुधवार	1001	2100	1101	351	501	
अन्नकूट	12-11-2015	गुरुवार	1001	2100	1101	351	501	
अक्षय नवमी	20-11-2015	शुक्रवार	1001	2100	1101	351	501	1501
प्रबोधिनी एकादशी (देवोत्थान)	22-11-2015	रविवार	1001	2100	1101	351	501	
कार्तिकी पूर्णिमा	25-11-2015	बुधवार	1001	2100	1101	351	501	
विवाह पंचमी(श्रीराम विवाहोत्सव)	16-12-2015	बुधवार	1001	2100	1101	351	501	

मलमास– 17.06.2015 से 16.07.2015 तक